आपदा प्रबन्धन

समाचार पत्रिका 8 (2), 2014

मुख्य सम्पादकः

डा. पीयूष रौतेला

सम्पादक मण्डलः

डा. के. एन. पाण्डे
मे. (से. नि.) राहुल जुगरान
भूपेन्द्र भैसोड़ा
श्वेता रावत

प्रारूपः

गोविन्द रौतेला

सम्पर्कः

vf/k'kklh fun'kd
vkink U;uhdj.k ,o icU/ku dUn
mÙkjk[k.M lfpoky;
ngjknu&248001 ¼mÙkjk[k.M½
njHkk"k % 91&135&2710232
&2710233
QDl % 91&135&2710199
oc lkbV% http://dmmc.uk.gov.in

---

bl if=dk e 0;Dr fd; x; fopkj y[kdk d 0;fDrxr fopkj g vkj vko';d ugh g fd og vkink U;uhdj.k ,o icU/ku dUn d fopkjk dk ifrfcfEcr djA y[kd }kjk 0;Dr fopkjk d fy; vkink U;uhdj.k ,o icU/ku dUn mRrjnk;h ugh gA

फिर वही प्रलाप

विगत वर्ष जून में राज्य में आयी आपदा से जन-धन की अपार क्षति हुयी। क्या हुआ, क्या किया गया, क्या किया जाना चाहिये था, क्या नहीं किया जा सका; इस सब पर बहुत कुछ कहा-लिखा जा चुका है और फिर आज इन सब बातों का कोई मतलब भी नहीं है। अभी तो आगे देखना है कि कैसे बेहतर किया जा सके।

और कुछ हो या न हो इस आपदा से हम सभी ने काफी कुछ सीखा और उसके आधार पर कई कार्य किये गये हैं व कई के बारे में योजना बनायी जा रही है। तब राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण व आपदा प्रबन्धन योजना को लेकर काफी कुछ लिखा गया था। तो योजना तैयार कर ली गयी है और प्राधिकरण के सशक्तीकरण पर कार्य किया जा रहा है। राज्य आपदा प्रतिवादन बल का गठन किया जा चुका है और वर्तमान मानसून अवधि में उसकी टुकड़ियाँ राष्ट्रीय आपदा प्रतिवादन बल के साथ आपदा संवेदनशील स्थानों पर तैनात कर दी गयी हैं। आपदा प्रबन्धन विभाग द्वारा जो खोज एवं बचाव दल लगाये जाते थे, वो तो है ही। इन प्रशिक्षित कार्मिकों की तैनाती से किसी भी आपदा की स्थिति में प्रतिवादन निश्चित ही त्वरित व प्रभावी होगा।

विगत के अनुभवों के आधार पर वर्तमान में राज्य के 52 स्थानों पर हैलीपैड बनाये जा रहे हैं। इनमें से गौरीकुण्ड, भीमबली व लिंचौली के हैलीपैड वर्तमान में तैयार हो चुके हैं। पिछली आपदा में विभिन्न स्थानों पर फँसे यात्रियों को निकालने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था इसलिये कई वैकल्पिक मार्ग तैयार किये जा रहे हैं और पूर्व में बने मार्गों का उच्चीकरण व सुदृढ़ीकरण किया जा रहा है। इस सब से जहाँ आपदा के समय किसी क्षेत्र के एकदम से अलग-थलग पड़ जाने की सम्भावनायें कम होंगी वहीं पर्यटन को भी बढ़ावा मिलेगा। बाढ़ व भूस्खलन से प्रायः प्रभावित होने वाले सड़क के हिस्सों के स्थिरीकरण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है और आवश्यकता के अनुरूप सड़कों का विन्यास बदला जा रहा है।

इसी के साथ क्षमता विकास हेतु निरन्तरता में खोज एवं बचाव तथा भूकम्प सुरक्षित निर्माण सम्बन्धित प्रशिक्षणों का आयोजन किया जा रहा हैं। साथ ही साथ आपातकालीन परिचालन केन्द्रों

का सुदृढ़ीकरण तथा विभिन्न सम्भावित आपदाओं के जोखिम का आंकलन किया जा रहा है। इस सब के साथ ही जन-जागरूकता हेतु विशेष प्रयास किये जा रहे हैं।

किसी भी आपदा की स्थिति में अन्तर्विभागीय समन्वयन सुनिश्चित करने के लिये विभागीय नोडल अधिकारियों की बैठकें आयोजित कर राज्य आपदा प्रबन्धन योजना के अनुरूप सभी के उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया गया है।

आपदा की स्थिति में सूचनाओं के प्रभावी आदान-प्रदान हेतु जनपदों को अतिरिक्त सैटेलाइट फोन दिये गये हैं। राज्य व कुछ जनपदों के आपातकालीन परिचालन केन्द्रों द्वारा आपदा सम्बन्धित सूचनाओं व पूर्वानुमानों के आदान-प्रदान हेतु एस.एम.एस. का भी उपयोग किया जा रहा है। चेतावनी प्रसारण हेतु सभी मोबाइल सेवा प्रदाता कम्पनियों के साथ भी समन्वयन किया गया है ताकि सम्भावित आपदा से प्रभावित हो सकने वाले क्षेत्रों में स्थित सभी मोबाइलों पर संदेश भेजा जा सके।

हम सच में 2013 से काफी आगे बढ़ चुके हैं पर अभी 07 जुलाई, 2014 को वन अनुसंधान संस्थान में राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन संस्थान, नई दिल्ली के सहयोग से आयोजित भूस्खलन सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्यक्रम में उपस्थित होने का मौका मिला। वहाँ व्याख्यान हेतु विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों को आमांत्रित किया गया था। तब जा कर पता चला कि कइयों के लिये समय वहीं जून, 2013 में बस थम कर रह गया है। तब दिये गये वक्तव्यों और जारी किये गये पूर्वानुमानों पर आत्ममुग्ध कुछ विशेषज्ञ उन पूर्वानुमानों को चेतावनी साबित करने के लिये प्रशिक्षणार्थियों को यह समझाने में व्यस्त नजर आये कि हमने तो समय रहते आपदा के बारे में बता दिया था। लब्बो-लबाब यह कि ऐसे में जो हुआ उसके लिये कोई दोषी है तो सिर्फ और सिर्फ राज्य सरकार। और अपने दावे को सही ठहराने के लिये धड़ल्ले से समाचार पत्रों में दिये गये साक्षात्कारों के उद्धरण परोसे जा रहे थे। उचित तो यह होता कि राज्य सरकार को इस सम्बन्ध में औपचारिक रूप से लिखे गये किसी पत्र को उद्धरित किया जाता। पर जो है नहीं उसे लाया भी जाये तो कहाँ से?

फिर जब 15 जून की दोपहर तक पूरे ताम-झाम के बावजूद मानसून के आगमन का पता तक न लग पाया हो, मंदाकिनी घाटी में आये जलप्रलय का अनुमान लगाने की अपेक्षा करना कुछ ज्यादा ही था। और अपनी तरफ से हमने कभी किसी को दोष दिया भी नहीं। इस

सब के लिये वैसे लम्बे समय तक फुर्सत भी किसके पास थी। अब तक अदालतों, आयोगों और सूचना के पचड़े में उलझे पड़े हैं, पर हर चीज की हद होती है। शराफत को कमजोरी मान लेना भी तो ठीक नहीं और फिर कोई सुने भी तो कब तक और क्यों?

एक तरफ चेतावनी दे देने का दंभ; उस पर आँकड़े ये कि 14 से 18 जून के मध्य किसी भी दिन रूद्रप्रयाग में 110 मिलीमीटर तक भी वर्षा नहीं हुयी। तो फिर ये चेतावनी किस बात की थी और तबाही हुयी तो कैसे? और फिर यदि मान भी लें कि आपको समय रहते पता था कि क्या होने वाला है तो आपने कुछ किया क्यों नहीं? सरकार को ई-मेल और टी. वी. पर बयानबाजी करके उत्तरदायित्वों से तो बचा नहीं जा सकता? राज्य सरकार को तो पता था नहीं पर आप तो विद्धान जन हैं; सब कुछ जानते थे। पर सब कुछ जानते-समझते बयानबाजी के अलावा किया आपने भी कुछ नहीं। ऐसे में बड़ा दोषी कौन हुआ? सदोष हत्या का मामला तो बनता है। यहाँ उद्देश्य दोष सिद्ध करना नहीं है पर सीमाओं का भान तो सभी को होना ही चाहिये।

हालात आज भी वैसे ही हैं। अगले 24 घण्टों में कुमायूँ के कुछ भागों में भारी वर्षा की सम्भावना के बाद क्षेत्र में कहीं भी कुछ घटित हो जाने पर आप एक बार फिर से शुरू हो जाओगे कि हमने तो बता दिया था। ऐसे तो चलने से रहा। उचित होता कि व्यर्थ बयानबाजी के स्थान पर आपदा से कुछ सीख कर कील-काटें दुरूस्त किये गये होते तो शायद आज हालात कुछ बेहतर होते। वह शायद सभी के हित में भी होता। पर यहाँ दूसरे के हितों की पड़ी किसे है। जब तक सुनने वाले मिले, बस ढोल बजाते रहो।

(पीयूष रौतेला)

Lamtharya The emotions of uprooted Uttarakhandis

- Devendra Kumar Budakoti

One of our village mango trees called 'Lamtharya', known for its distinct flavor and sweetness could not bear the brunt of heavy rain and storm and was eventually uprooted in the month of April 2014. I came to know of it after seeing my nephew Babbe's post on Facebook. It carried the photo and news that 'Lamtharya' has been uprooted. Many of our villagers sent their nostalgic comments on the sad event.

For me the uprooting of this tree, also symbolizes uprooting of the village, though in gradual process since the early seventies. What was the storm that uprooted most of the families? This troubled my mind and made me look into the social history of the village. I realized that my village was a part of the larger picture of the same social history unfolding all through the state of Uttarakhand.

Every year since 2010, the Chai Gram Utsav is making an effort to uphold and preserve the culture and traditions of the region and to discuss and plan what best could be done on the development front. Every year individuals from development sector are invited to the Gram Utsav to contribute to this effort.

In the fifth year of Chai Gram Utsav in 2014, we plan to come out with a souvenir magazine. When my cousin Padmesh told me to write something for the Gram Utsav magazine, I was really at loss to think on a topic, though he had briefed on the possible topics.

The Lamtharya incident gave me the starting point, which actually triggered after reading the sentiments expressed by people on Facebook. Had people and families stayed back, the village would have had at least 300 families but today it is reduced to mere 6 to 8 families, who are the permanent residents. This is noticed when non resident families assemble at the time of Gram Utsav and share common interests and tastes for three days.

Most of the new generation may not have even tasted the Lamtharya mango flavor and sweetness. The new generation comes for a holiday at that time despite lack of urban amusements and modern amenities; though today the village is connected by road, has water supply, electricity and nearly all the houses have toilets.

The uprooted generation talks of good times and are invariably nostalgic about their childhood, adolescence and youthful days in the village. This is the generation

which enjoys the old folk songs and understands the meaning and nuances in the lyrics of Narendra Singh Negi. The new generation does not have much in common to share about village life, so the uprooting of the old tree will not be of any significance to them; however they may be interested to know the social history of the village.

Agriculture has always been of subsistence level and was supplemented by income from other sources. Almost every family had a member working in some government or private service and their salary helped the joint family system. Some karmkandi pundits supplemented the joint family income. Few of them even had their jajmani in the plains of western Uttar Pradesh. These pundits would leave the village for their jajmani around April/May and come back only around September/October.

The social history of Uttarakhand is reflected even in our village and vice versa. In post-independent period many of the hill folks started buying land and later settled down in the Terai-foothills. The Ex-servicemen who fought in the Second World War were offered land in the foothills by the government in the early fifties. Two of Chai's ex-servicemen were also allotted land in the terai region of Bijnor district. They moved with their families only in late fifties. Later in early sixties, other brothers and their family also joined them. Today we have few Chai families settled in the Kadarabad tehsil of Bijnor district. In fact one can see many families of former ex-servicemen of the state well settled in the entire stretch of the terai-foothill region of the state.

In early fifties two to three youths were employed with the central government in Delhi. Soon after marriage they took their spouses with them and raised their family there. Later their children were employed in and around Delhi. Today many families have settled in the NCR-

Delhi, Faridabad and Gaziabad. Subsequently uncles and brothers helped each other secure jobs and to settle there. Some who retired from government and private services also settled in NCR. Some of those who retired from service also settled in Kotdwar and Dehradun. Families moved out gradually in the seventies and the momentum caught on in the eighties and peaked in the nineties.

The first generation of Uttarakhandi who left their village were induced by the 'pull factor' of employment and job opportunities. Subsequently realizing the value of education, urge of better education indirectly pulled people to leave their village. Today the 'push factor' is lack of livelihood options besides the poor educational facilities. The manufacturing and service sector in the state is still underdeveloped and with no income from agriculture, people had no choice but to leave their ancestral village.

Till late sixties, majority of the people of Uttarakhand lived in their villages and those working outside came regularly on all major occasions, holidays and on leave to the village. Witnessing the development in the plains, men in seventies, started taking their spouse and children with them. In the eighties those retiring from service started building their houses in the plains. By the nineties those who could afford followed the same pattern of permanently settling in the plains.

Till late sixties there was no road connecting majority of the hill villages, no electricity or water and students had to walk many miles to attend school. Some development came in 80's and 90's, by that time many of the families had settled or planned to move out of the village. This was also the period when agricultural activities started diminishing and today except for some vegetables in the kitchen garden major crops like wheat, rice, pulses and millets are no more grown. Due to this even animal husbandry has diminished and one hardly finds fresh milk in the villages. All this happened gradually and hence today even if the wild boar and monkey problem is solved, agricultural activities would not be revived as most of the families have left the village.

Chai village is a case study and similar phenomenon can be seen in other villages of Uttarakhand. Many villages have been deserted or are on the verge of desertion. With no source of income in the village, it is the general feeling that if everything has to be bought from the market, why keep the family behind in the village. Many families have also moved out to nearby town and cities to give better education to their children.

Development and prosperity in the hills is yet to be seen even after a decade of state formation. Villages are still getting deserted and the youth are still going out for employment. The 2011 census authenticates this, by showing the demographic shift from the hills to the foothills and in the plains. The political class has no vision and mission and the uncommitted bureaucracy is just maintaining the state machinery without any concrete policy and plan. I do not know if academicians, development experts and planners have any blueprint for hill development. In the prevailing situation, soon Chai would be another village added in the list of deserted villages of Uttarakhand.

(Author is a freelance development consultant)

वो दरकती दीवार

– पीयूष रौतेला

पिछले कुछ सालों के परिदृश्य पर गौर करने पर दो बिन्दु उभर कर सामने आते हैं; एक यह कि यहाँ पहाड़ में लगातार पलायन हो रहा है और दूसरा यह कि इस क्षेत्र में होने वाले भूस्खलनों की संख्या में इजाफा हुआ है। सरसरी तौर पर यह दोनों कहीं से भी एक-दूसरे से सम्बन्धित नहीं लगते हैं, पर क्या सच में ऐसा है? सम्बन्धों को दर्शाने या फिर उन्हें नकारने के लिये इन दोनों ही बिन्दुओं के विभिन्न पक्षों पर गौर करना आवश्यक है। इसकी शुरूआत भूस्खलन से की जा सकती है।

पिछले कुछ सालों में हुये भूस्खलनों के उपरान्त राज्य के अनेक क्षेत्रों में जाने का मौका मिला और उससे काफी कुछ सीखने व समझने को मिला। वैसे तो जहाँ कहीं भी ढाल में अस्थिरता उत्पन्न होती है, हम सामान्यत: उसे भूस्खलन की श्रेणी में डाल देते हैं। संचार माध्यमों द्वारा ऐसा प्राय: किया जाता है और इसमें उनकी कोई गलती है भी नहीं। वो तो बस तकनीकी जटिलता से बचते हुये जो हुआ उसे लोगों को दिखाने व बताने का प्रयास कर रहे होते हैं।

तकनीकी रूप से देखें तो भूस्खलन एक जटिल प्रक्रिया है और इसके अनेकों स्वरूप या प्रकार हो सकते हैं। मेरे हिसाब से ज्यादातर स्थानों में इसे मिट्टी या मलबे के प्रवाह (mud / debris flow) के रूप में ज्यादा सटीक रूप से परिभाषित किया जा सकता है। जैसा कि मैंने देखा है कि ज्यादातर परिस्थितियों में यह प्रवाह ढाल के ऊपरी भाग में काफी छोटे क्षेत्र से आरम्भ होता है और इस क्षेत्र में चट्टानों की अपेक्षा मलबे या मिट्टी की बहुतायत होती है। काफी छोटे क्षेत्र से

प्रारम्भ होने वाला यह प्रवाह अपने साथ मार्ग में आने वाले पत्थरों, चट्टानों, पेड़ों व अन्य को अपने साथ बहा कर नीचे की ओर ले जाता है और ढाल में नीचे की ओर इसका स्वरूप विकराल व अत्यन्त विनाशकरी हो जाता है। इसके द्वारा किये जाने वाले विनाश को देख कर कई बार यह कल्पना तक करना कठिन होता है कि यह भूस्खलन इतने छोटे क्षेत्र से आरम्भ हुआ होगा। अनेकों स्थितियों में देखा गया है कि यह भूस्खलन या मलबे का प्रवाह बंजर खेतों से आरम्भ होता है।

यहाँ पहाड़ में खेती-बाड़ी के लिये हमारे पूर्वजों ने कड़ी मेहनत कर के अनुपयोगी पहाड़ी ढाल को सीढ़ीदार खेतों का स्वरूप दिया। गौर से देखें तो उन्होंने हर एक खेत के लिये एक प्रतिधारण दीवार (retaining wall) का निर्माण किया। कितनी मेहनत, कितना समय लगा होगा इन सब को बनाने में? इससे और कुछ हुआ हो या न हुआ हो पर खेती योग्य जमीन मिलने के साथ ही पहाड़ी ढाल के स्थिरीकरण में मदद अवश्य मिली; आज भी ढाल को सीढ़ीदार स्वरूप देना भूस्खलनों के उपचार का सर्वाधिक प्रचलित तरीका है।

जब तक लोग थे, इन सीढ़ीदार खेतों में नियमित रूप से खेती-बाड़ी की जाती थी, खेतों के छोर पर बनी दीवारों का रख-रखाव किया जाता था। धीरे-धीरे पर लगातार हो रहे पलायन के कारण पिछले कुछ दशकों में पहाड़ में गाँवों की आबादी तेजी से कम हुयी है। जब लोग ही नहीं होंगे तो खेती करेगा तो कौन? पहले यदि कुछ परिवार गाँव से बाहर चले भी जाते थे तो उनकी जमीनों पर रिश्तेदार, पड़ोसी या अन्य खेती किया करते थे पर यहाँ तो सभी एक साथ गाँव छोड़ कर जाने पर आमादा थे। और जो पीछे छूट गये थे उनके बस का खेती करना था नहीं।

इस तरह पहाड़ों में गैर-आबाद होते गाँवों के साथ उपजाऊ खेत बंजर होनेल गे।अ ाजप हाड़क ेज यादातरग ाँवोंम ेंअ धिकांशख ेतीय ोग्य भूमि बंजर पड़ी है। कहीं-कहीं तो खेतों में जंगली पेड़ व झाड़ियाँ तक उग आयी हैं। ऐसे में जब यहाँ किसी को इन खेतों में खेती-बाड़ी करने की फुर्सत नहीं रही, इनकी दीवारों की देख-रेख व मरम्मत करें भी तो कौन?

अनेकों स्थितियों में बंजर खेतों की कमजोर व क्षतिग्रस्त यह दीवारें ही मिट्टी व मलबे का प्रवाह आरम्भ करने के लिये उत्तरदायी पायी गयी है। इन दीवारों के पीछे काफी बड़ी मात्रा में मिट्टी व मलबा पड़ा होता है। दीवार के क्षतिग्रस्त होने की स्थिति में हल्की बारिश में ही इससे विनाशकरी मलबे के प्रवाह का जन्म हो सकता है।

इससे पलायन व भूस्खलनों के मध्य के सम्बन्धों को तो समझा जा सकता है पर इसे रोकने के लिये भी तो कुछ न कुछ करना होगा। अब जो चले गये वो तो अपने खेतों की दीवारों को ठीक करने के लिये तो आने से रहे। ऐसे में जो करना है, वो बाकी बचे रह गये लोगों को ही करना होगा। हमारी सबसे पहली प्राथमिकता मानव जीवन बचाना है। अत: आबादी वाले क्षेत्रों के ऊपरी ढाल में बंजर खेत होने की स्थिति में उनकी दीवारों का रख-रखाव करना होगा। इन कार्यों को ग्राम्य विकास विभाग की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत भी किया जा सकता है। इसी प्रकार सड़क की ऊपरी ढाल पर स्थित बंजर खेतों की दीवारों का रख-रखाव सम्बन्धित सड़क के स्वामित्व वाला विभाग कर सकता है। फिर अपनी स्वयं की सुरक्षा के बारे में तो सभी को कुछ तो करना ही होगा। सब कुछ सरकार के भरोसे छोड़ देने से तो कुछ हासिल होने से रहा। यदि आपके घर की ऊपरी ढाल पर किसी खेत की दीवार क्षतिग्रस्त हो तो उसे नजरअन्दाज न करें; यह खतरनाक हो सकता हैं। अच्छा होगा कि किसी और के द्वारा दीवार की मरम्मत किये जाने का इन्तजार करने की जगह आप स्वयं उस दीवार की मरम्मत करवा लें। यह अपने व अपने परिवार के हित में लिया गया आपका बड़ा और महत्वपूर्ण फैसला होगा।

Gender issues in June, 2013 disaster of Uttarakhand

- R. S. Goyal

Entrenched patterns of social relationships cause certain groups of people to suffer more than others during all phases of disaster management cycle. This is particularly pronounced during and after the disasters. It is recognised worldwide that people's vulnerability to a large extent depends on the assets they have. Owing to manifestation of existing gender inequalities in most

societies, women often tend to have limited access, in comparison to men, to assets - physical, financial, human, social, and natural capital such as land, credit, decision-making bodies, agricultural inputs, technology, extension and training services. These limit their capacity to adapt to difficult circumstances. Consequently, women tend to experience far adverse consequences in the wake of natural disasters.

Gender perspective has however not been adequately addressed in disaster research, planning and management. Further, women's actual and potential roles in disaster risk reduction have often been overlooked. Despite significant progress in integrating gender issues analytically and in the field, neither governmental agencies nor NGOs have as yet fully integrated gender relations as a factor in disaster vulnerability and response. They have not, at the same time, engaged women as equal partners in disaster mitigation and community-based planning.

More than a year hence the disaster of June 2013, the residents of the disaster affected villages and towns in Uttarakhand are still braving the odds and struggling to bring normalcy in their lives. Vast tracts of agricultural lands have either been washed off or covered with thick pile of debris and silt, their homes have either been damaged or destroyed, their cattle have been lost, their savings have been carried away in the deluge and many are left with very little or no money.

Further, majority of the families in the disaster-affected region were depended on tourism, pilgrimage and subsistence farming for their livelihood. As there is little hope of revival of both pilgrimage and tourism in near future and income from agriculture is too meagre to support the family, hardships would haunt the masses for a long time to come.

Women were larger sufferer in these flash floods. Besides the economic and physical losses, many have lost their husbands and children in the prime of their youth. This dual tragedy has shattered the lives of these women. Though, aggregate estimates of the loss of life, cattle head, physical assets have been made available by different governmental or other competent authorities,

Sl. No.	Village	Population	Number of Households	Percentage of households depended on Kedarnath yatra	Average landholding (in nali)	Number of casualties	Number of houses damaged	Agricultural land lost (in nali)
1.	Dhani	247	46	78	3	5	00	40
2.	Badasu	600	156	96	4	23	00	35
3.	Kalimath	645	250	80	5	00	35	30
4.	Dewali Bhanigram	1254	300	90	7	54	00	00
5.	Nakot	503	148	12	4	00	00	00
6.	Silli	300	110	00	2	00	40	48
7.	Railgaon	90	15	85	5	3 boys	00	30
8.	Gavni	517	110	00	2	00	34	60
9.	Damar	511	207	18	2	3	00	00
10.	Dunger	500	111	90	1	13	00	30
11.	Jal Talla	346	58	70	10	20	00	130
12.	Jal Malla	625	98	90	7	17	00	60
13.	Trijugi Narayan	1700	250	90	5	20	65 shops	00

an in-depth analysis of the effect of disaster on women is particularly desirable to add to the knowledge base and, also to supplement the rehabilitation efforts being put in by Government and other agencies.

In order to assess the impact of disaster, particularly on women, data was collected from 13 villages located in the zone of Kedarnath shrine and somehow or other affected by the June 2013 disaster. Participatory appraisal, key informant interviews and focused group interviews were resorted to for collecting pertinent information.

More than two third of the studied villages were depended on Kedarnath shrine for their livelihood. For more than 90 percent families of 5 of the 13 villages, the main source of income was pilgrimage to Kedarnath temple. Amongst the studied villages 9 have incurred human losses during June 2013 disaster. It varied from 3 in Railgaon and Damar to 54 in Dewali Bhanigram. All the dead were males, including boys. It is to be noted that the women do not accompany their husbands / family members to Kedarnath when they work there. This is attributed to harsh living conditions and limited accommodation available in Kedarnath.

All the boys who died in the calamity were in 12 to 15 years age group. These boys had accompanied their fathers or family members to Kedarnath for assisting them in their work. Their schools were closed for summer vacations and they had no other work at home. It has been noted that it was a general practice for the boys in this area. Many boys also worked as casual workers at Kedarnath to earn money during pilgrimage season.

The loss of houses and agricultural land was largely in the villages that were located on the riverbank or hit by the landslide. The lost ponies were in service at the time of disaster and were washed off in the flood.

Analysis of the information collected for this study creates a scenario (of women) that is quite different from what is normally observed in most post-disaster settings. Though, it is true that in this disaster, both men and women have suffered, but they have certainly suffered differently. The specific vulnerability of women in post-disaster situations as reported in the literature, is, by and large not observed in the study area. Gender specific impact of disaster is also observed to be moulded differently.

In the hills of Uttarakhand, there are two parallel economies; one controlled by women and the other by men. Except for tilling of land women do almost all farm related activities, grow food and make a significant contribution towards running the household. They are thus self-employed and not wholly depended on their husbands for economic upkeep. Men either run small business in the same or neighbouring places or work outside and send remittances.

In the study area, economic losses incurred to women (occupation wise) in June 2013 disaster were very small except in villages where their lands were washed off. Most women were observed to be continuing with their usual occupations.

On the other hand, men have suffered heavily. Most men were engaged in the business of providing services of various kinds to Kedarnath pilgrims. With the disaster, pilgrimage has literally come to a halt and the source of their income has dried out totally. These men do not have any other vocational training. The development pattern in the hills has also not created other employment avenues for them. This disaster has not only exposed their economic vulnerability but has also brought forth a dilemma. Thanks to women's agricultural activities, the families may not starve, but for long-term sustenance of the family, men would have to find alternate employment very soon. The chances of revival of Kedarnath pilgrimage are definitely there, but it may take quite a while. There is definitely a desire to explore alternate avenues, but nobody seems to know what and how of it.

In the study area only men have lost their lives in Kedarnath disaster. The answer could probably be found in the culture or lifestyle of women. Either due to their pre-occupation with agriculture, or due to culture or due to lack of proper familial accommodation in Kedarnath, women do not normally accompany their men to Kedarnath. Consequently, only men (from the villages covered by present study) have died in Kedarnath disaster.

Loss of men folk has shattered the life of a large number of women in their young age. As widow re-marriage is not very common, it further adds to their misery. Yet there are several positive phenomena that have saved them from devastation. Firstly, their engagement in agricultural activities keeps them occupied and gives economic stability. Secondly, the compensation paid by the government for the loss of their men folk was swift and reasonable and most importantly, the money was particularly paid in wife's account only. It allows them to maintain a second source of income and also live a life with adequate means. Thirdly, they were not alone in their sorrow. From every village, several women have been widowed at the same time and in the same tragedy. Moreover whole society and nation stood by them. Adoption of all the widowed women of Dewali Bhanigram by Sulabh International is a live example of such a support.

Women's social and physical vulnerability at the time of disaster was neither reported nor observed in any of the villages taken up for the study. Perhaps it has much to do with hill culture, where women are given their due status and in all probability, they have earned it by putting in their tireless labour. No incidence of sexual exploitation that could be linked to disaster, was reported in any of villages or in nearby areas. Women were not even prepared to discuss about it. However, traces of emotional distress were still noted amongst widowed women.

Supply of ration and items of daily needs is an important short-term measure at the time of disaster. In the study area, timely and ample supply of relief material in all villages and to all the families has played an important role in bringing life to normal soon after the disaster. It was largely helpful and appreciated by women. Perhaps, until and unless warranted, special provision for women in emergency relief supplies may not be necessary.

It has been observed that normally women are not involved, when it comes to disaster management and mitigation planning and implementation. But there are examples that show that given the opportunity, women are capable of effectively responding to emergencies. Further, women were also at the forefront in collecting relief supplies from collection centres.

Self-employment of women in agricultural pursuits has proved to be an effective buffer that helped them withstand the adverse economic affect of disaster. In view of high disaster vulnerability of the region, it is desirable that women's agricultural skills are further strengthened and opportunities to earn more (from the same field) are created. This would effectively contribute towards reducing economic vulnerability of women in disasters.

It may take a while for normalcy to return and Yatra to resume at its usual pace. Economic uncertainly thus looms large over large male population of the area that was hitherto earning their livelihood from Yatra related chores. In the existing development pattern in the mountains there are very limited employment potential in secondary or allied sectors, and there is limit to men's engagement in the primary sector. Moreover if men venture in this area, they would only displace women, who are doing well with the existing means. These men have very few options. They could migrate and look for alternate employment elsewhere. But with limited skills, their struggle would be a long one and the possibilities of success would be bleak. Alternatively, government and development agencies could explore avenues for self-employment of these men in the hills itself by creating necessary eco-friendly infrastructure, linkages with the industry and market, imparting vocational skills and the like. These ventures could also be used to strengthen disaster preparedness.

(Author is an advisor in Ramana Group, an Ahmedabad based NGO)

जिम्मेदार कौन प्रकृति अथवा मानव

-के. एस. सजवाण एवं सुशील खण्डूरी

पिछले कुछ वर्षों में बादल फटने एवं बाढ की घटनाओं में हुई वृद्धि के दृष्टिगत आवश्यक हो जाता है कि इनके कारणों की विवेचना कर इनसे होने वाली क्षति को कम करने के लिए ठोस रणनीति बनायी जाय। बादल फटना एवं बाढ़ वर्षा ऋतु में होने वाली प्राकृतिक घटनायें हैं जिनके साथ भूस्खलन भी जुड़ा हुआ है। प्रायः पहाड़ों में भूस्खलन के कारण बाढ की स्थिति पैदा होती है। इसका खामियाजा निचले क्षेत्रों में बसे लोगों को उठाना पड़ता है। अलकनंदा घाटी में 1970 में एवं कनोल्डिया गाड़ (भागीरथी घाटी) में 1978 में आयी बाढ़ इस तरह से हुई तबाही के सबसे बड़े उदाहरण है। इन दोनों ही घटनाओं में भूस्खलन ने नदी के मार्ग में अवरोध पैदा किया, जिससे भूस्खलन के मलबे के पीछे झील का निर्माण हो गया। भूस्खलन द्वारा निर्मित इन बांधों के टूटने के पश्चात् निचले क्षेत्रों में भारी जनहानि एवं तबाही का सामना करना पड़ा।

यदि जून 2013 की आपदा की बात करें तो कई स्थानों पर बांधों के निर्माण के लिए खोदे गये पहाड़ों का मलबा अवैज्ञानिक एवं अव्यवस्थित रूप से नदियों के किनारों पर निस्तारित किया गया था। इससे जहाँ एक ओर नदियों का मार्ग परिवर्तित हो गया तो वहीं दूसरी ओर इसने नदी के कटाव को धार देने का काम भी किया।

बादल फटना हिमालय क्षेत्र में वर्षा ऋतु में होने वाली प्राकृतिक घटना है तथा सामान्यतः 1200 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में घटित होती है। इसे सीमित क्षेत्र में होने वाली अत्यधिक वर्षा के रूप में समझा जा सकता है। परिभाषा के अनुसार इस घटना में सामान्यतः किसी स्थान पर 1 किमी. के दायरे के भीतर एक घंटे के अन्दर 100 मिमी. वर्षा होनी चाहिए। पर यहां जगह-जगह वर्षा मापी तो लगे हैं नहीं। अतः भारी वर्षा से नुकसान होने की स्थिति में घटना को प्रायः बादल फटना कह दिया जाता है। भू-आकृति रूप से दर्रे, गहरी, संकरी एवं कीप रूपी घाटियाँ बादल फटने के लिए उचित एवं उपर्युक्त क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त बांज एवं बुरांश के घने वनों वाले क्षेत्रों में बादल फटने की घटनायें प्रायः होती हैं।

बादल फटने अथवा मूसलाधार वर्षा के कारण होने वाले भूस्खलन से आये मलबे की वजह से कई स्थितियों में संकरी घाटियों से बहने वाली नदियों का मार्ग कुछ समय के लिए बाधित हो जाता है जिससे अस्थाई झील का निर्माण होता है। जब झील में एकत्रित पानी द्वारा लगाया जा रहा बल भूस्खलन द्वारा बनाये गये बांध की धारण करने

की क्षमता से अधिक हो जाता है तो पानी मलबे के अवरोध को तोड़कर तीव्र वेग से बहने लगता है। इस स्थिति में नदी अपने तटों पर आने वाली सभी बाधाओं को तोड़ कर आगे बढ़ती है तथा कभी-कभी अपने तटों की सीमा भी लांघ सकती है।

अलकनन्दा की सहायक नदियों में से एक बिरही गंगा में सन् 1893 में बादल फटने के बाद हुये भूस्खलन के कारण 350 मीटर ऊँचा बाँध बन गया था। बाँध के पीछे बनी झील को गोहना ताल के नाम से जाना जाता है। यह झील 5 किलोमीटर लम्बी एवं 2 किलोमीटर चौड़ी थी। जून 1970 में बादल फटने से यह झील टूट गई जिससे निचले क्षेत्र में नदी का जलस्तर 50 मीटर बढ गया। झील से 110 किलोमीटर दूर स्थित श्रीनगर शहर में भयानक तबाही देखी गई एवं हरिद्वार में गंगा नदी के जल स्तर में 4 मीटर की बढ़ोत्तरी दर्ज की गई ।

हाल ही में मन्दाकिनी घाटी में 16-17 जून 2013 को हुई मूसलाधार वर्षा के कारण केदारनाथ तथा निचले क्षेत्रों में भारी तबाही हुई। वर्षा मापी की अनुपलब्धता के कारण इसे बादल फटना कहा जाये अथवा नहीं, प्रश्न हमेशा अनुत्तरित ही रहेगा। हाँलाकि क्षति के परिमाण के कारण प्रथम दृष्टया इसे बादल फटना ही कहा गया। भारी एवं मूसलाधार वर्षा की वजह से इस सम्भावना से भी इनकार नही किया जा सकता कि जलस्तर बढने एवं पहाड़ी ढलानों से आए मलबे की वजह से मन्दाकिनी नदी का जलप्रवाह कई स्थानों पर रूका होगा। चोराबाड़ी ताल के टूटने के कारणों में भी मूसलाधार वर्षा का होना प्रमुख है। जून के महीने में सूरज की तपन से बर्फ पिघलने की प्रक्रिया अपने चरम पर होती हैं। उच्च हिमालय क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के कारण कुछ वर्षो से अधिक हो रही भारी वर्षा ने आग में घी डालने का काम किया। जो बर्फ सामान्य प्रक्रिया से पिघल रही थी वह अब मुसलाधार वर्षा के कारण अत्यधिक तेजी के साथ पिघलने लगी। चौराबाड़ी ताल में अत्यधिक मात्रा में पानी जमा हो गया जल्द ही इसका दबाव ग्लेशियर के मलबे के अवरोध की धारण क्षमता को पार कर गया और ताल टूट गया। ताल टूटने से तथा विभिन्न जल धाराओं (दूध गंगा, सरस्वती एवं छोटे-मोटे नालों) से आए पानी के साथ लाखों मेट्रिक टन मलबे ने मंदाकिनी घाटी का स्वरूप ही बदल दिया। इससे ही केदारनाथ एवं निचले क्षेत्रें में भारी तबाही एवं जनहानि हुई।

मनुष्य ने जिस प्रकार से धरती को कंक्रीट के जंगलों में तब्दील

किया है, उसका खामियाजा ग्लोबल वार्मिग एवं मौसम में हो रहे परिवर्तन के रूप में भुगतना पड़ रहा है। भूजल स्तर में आ रही तेज गिरावट के लिए भी मनुष्य द्वारा निर्मित कंक्रीट के जंगल ही जिम्मेदार हैं। तमाम चेतावनियों के बाद भी मनुष्य के द्वारा नगरीकरण के लिए वनों का विनाश किया जा रहा है एवं हरे-भरे जंगलों की जगह कंकरीट के जंगल तैयार किये जा रहे हैं। धरती पर होने वाली वर्षा का पानी इन कंक्रीट के जंगलों की वजह से जमीन के अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता है और सीधे नदी-नालों में पहुंच जाता है। थोड़ी सी वर्षा होने पर ही नदी-नालों के जलस्तर में काफी वृद्धि हो जाती है। हमारा लगातार नदी क्षेत्र में अतिक्रमण करना और वर्षा के जल का सीधे नदी-नालों में पहुंच जाना बाढ़ से होने वाली क्षति के परिमाण में हो रही वृद्धि का मुख्य कारण है।

नदियों पर मानव निर्मित बाँधों के जलाशय स्थानीय मौसम में बदलाव ला सकते हैं और इसका संबंध वर्षा की तीव्रता एवं बादल फटने की घटनाओं से भी हो सकता है। आज इन जलाशयों के पर्यावरणीय प्रभावों व इनके बादल फटने एवं वर्षा के स्वरूप में हो रहे बदलावों के मध्य के सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में शोध किये जाने की आवश्कता है।

हिमालय क्षेत्र में ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव भी सीधे तौर पर देखा गया हैं जिसके परिणामस्वरूप हिमनद पिघल रहें हैं, ऊँचाई की तरफ खिसक रहे हैं, बड़े हिमनद छोटे-छोटे भागों में टूट रहे हैं तो छोटे-छोटे हिमनद पूरी तरह पृथ्वी के मानचित्र से गायब होते जा रहे हैं। गंगोत्री हिमनद 20 मीटर प्रति वर्ष की दर से घट रहा है। इस प्रकार पृथ्वी के तापमान में हो रही वृद्धि के कारण हिमालय क्षेत्र में पानी ज्यादा मात्रा में हिमनद से पिघलकर समुद्र में जा रहा है तथा हिमनदों वाले क्षेत्र में बड़ी-बड़ी झीलें देखी जा रही हैं।

मन्दाकिनीघ ाटीम ंअ ायीअ ापदाज लवायुप रिवर्तनक ेप ्लस्वरूप घटित हुई है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है परन्तु परिवर्तन की दिशा और गति का निर्धारण प्रकृति द्वारा स्वयं ही किया जाना चाहिए। यदि हम उस परिवर्तन की दिशा या गति में अपनी इच्छापूर्ति के लिए उत्प्रेरक का काम करेंगे तो उसका खामियाजा तो हमें भुगतना ही पड़ेगा। बिजली अथवा किसी अन्य के बिना मानव जीवन तब भी चल जाएगा। लेकिन यदि धरती पर पानी कम हुआ तो मानव के अतिरिक्त इसका खामियाजा अन्य जीव-जन्तुओं को भी भुगतना पड़ेगा क्योंकि जल ही जीवन है।

उत्तराखण्ड में बादल फटने एवं भारी वर्षा का आंकलन करने के लिए चारों धामों एवं कुछ अन्य जगहों पर जहां पर पहले भी बादल फटने से भारी नुकसान हुआ है ऐसे स्थानों को चिन्हित करके वर्षा मापी लगाने की आवश्यकता है। हिमनद क्षेत्रों में बन रही झीलों की सारणी एवं उनका नियमित आंकलन करने की जरूरत भी है।

मुसलाधार वर्षा, बादल फटने, बाढ एवं भूकम्प आने की स्थिति में टूटी-फूटी चट्टानें, भूपर्पटी में स्थिति बड़ी दरारें (मेन सेन्ट्रल थ्रस्ट एवं मेन बाउन्ड्री थ्रस्ट इत्यादि), पुराने भूस्खलन एवं अपरदन से निर्मित क्षेत्र एवं नदी-नालों के तटों पर स्थित समतल वेदिकायें खतरनाक एवं असुरक्षित साबित होते हैं। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के क्षेत्रों में ही अधिक तबाही एवं क्षति देखने को मिलती है।

नदी के आस-पास के क्षेत्रें एवं तटों पर कूड़ा-कचरा, सीवर, जल एवं पहाड़ों का मलबा निस्तारण की उचित व्यवस्था करके, निर्माण को सीमित करके, विभिन्न वनस्पति एवं वृक्ष उगाकर बाढ़ के प्रकोप को कम किया जा सकता है एवं नदियों को नव जीवन दिया जा सकता है।

बांध एवं सड़क निर्माण से पूर्व पहाड़ों के मलबे को उचित स्थान पर डालने की व्यवस्था की जाय। इनके निर्माण से जितने वृक्षों एवं वनस्पतियों को हानि हुई है उसी संख्या में वनस्पति एवं वृक्षारोपण किया जाय। जिस प्रकार बांध बनाते वक्त मानव विस्थापन का ध्यान रखा जाता है उसी प्रकार वृक्षों, वनस्पतियों एवं पशु-पक्षियों के लिए भी व्यवस्था होनी चाहिए।

मानव डबल लेन, फोर लेन सड़कों के निर्माण एवं पहाड़ों पर रेलगाड़ी दौड़ाने के बारे में तो बात करता है मगर उससे पर्यावरण को होने वाली क्षति की भरपाई का उसके पास कोई जवाब नहीं है और यदि है भी तो कागजों में कैद होकर रह जाता है। अलकनन्दा नदी पर श्रीनगर गढ़वाल में बनने वाला बांध इसका जीता जागता उदाहरण है। इस परियोजना का लगभग 90 प्रतिशत कार्य पूर्ण हो चुका है परन्तु अभी तक परियोजना प्रबंधन के द्वारा जो वृक्षारोपण होना था वह भी फाईलों में ही कैद है। जून, 2013 की आपदा के पश्चात श्रीनगर शहर को जो क्षति पहुंची थी उसकी भरपाई तो हुयी नहीं, आलम यह है कि अलकनन्दा चौरास स्टेडियम को काटकर मार्ग में परिवर्तन करने जा रही है, जबकि समय रहते इसका हल निकाला जा सकता था।

प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली क्षति की जिम्मेदारी प्रकृति तो लेने से रही। वह तो चेतावनी देती है। आखिकार मानव को ही यह जिम्मेदारी लेनी है। प्रकृति से हम सभी ने लेना तो सीखा है मगर इसके बदले देने के बारे में कभी नहीं सोचा। ऐसा नहीं है कि प्रकृति एवं पर्यावरण को बचाने की जिम्मेदारी सिर्फ सरकार, बांध बनाने वाली कम्पनी अथवा सामाजिक संगठनों की है, बल्कि आम आदमी भी पेट्रोल, डीजल, बिजली, पानी के अनावश्यक उपयोग को रोक कर एवं पेड़-पौधे उगाकर इस महत्वपूर्ण कार्य में अपना योगदान दे सकता है।

Menace of road accidents

- Rahul Jugran

The sudden and tragic loss of a Union Minister and popular leader Shri Gopinath Munde in a road accident in Delhi, a road accident in the month of May in district Chamoli taking toll of 17 and another 13 in the same month in Tehri in Uttarakhand were all tragic and big losses. The irony is that the nation wakes up for a short while to address and discuss the very important issue of road safety after big media coverage of such incidents.

Whereas the UN general assembly had adopted a resolution on road safety way back in 2005 to invite the member states to implement the recommendations of the

"World Report on Road Traffic Injury Prevention"; the progress in our nation despite huge numbers of ever augmenting road casualties and injuries remains pathetically slow.

On the other hand it comes as a surprise to know that India is not a signatory to the "UN Convention on Road Traffic 1968". The convention prescribes detailed actions to be carried out by the contracting countries in interest of "safety of people".

"Safety of people" to me sounds ironical when I see adventurous spirit of people on roads and highways with proud and powerful vehicle owners dominating the roads in proportion to the size of their vehicles and two wheeler riders and pedestrians equally displaying their magic stunts on the roads as a seasoned trapeze artist in a circus.

In India we lose around 13 people every hour due to road accidents with an approximate annual tally of 1.5 lakhs. Year 2011 indicates a toll of 1.42 lakhs casualties and 5.11 lakh injuries. Given the enormity of the situation, I wonder if road accidents should also be included in the list of disasters. Road safety cannot really be seen in isolation; just as a safety measure on road. It has to encompass aspects related to road design, vehicle safety features, traffic rules and regulations, state of their implementation, awareness of people, strict implementation of laws, emergency ambulance services and trauma care centers apart from many others that have to be core components of any initiative towards addressing the cause of road safety in India.

Yes, in a diversified country as ours, the solution may not necessarily be strictly uniform in the perspective of different circumstances and situations on ground, varying from state to state. However certain common basics should be adhered to. To start with we do need state and national level agencies for collecting and analyzing data, recording the data, making sound road safety policies and plans along with detailed research. Apart from this we need to work upon immediate interventions and long term strategies. Certain measures for immediate intervention as summarised in sections below.

Safety of pedestrians and cyclists: Pedestrians and cyclists are the worst affected by way of pedestrian walkways, rules relating to speed limits and their strict enforcement in urban areas. Greater visibility can be provided to pedestrians / bikers with the help of reflective jackets.

Safety of two wheeler riders: It is ironical that on one side the Motor Vehicle Act of India makes wearing of

helmet by all two wheeler riders compulsory, transport being a state subject, it is up to the states to enforce the law or not. It has been adequately proven through various data and studies that wearing helmets and keeping the headlights on during daytime reduce crashes by 10-20 percent. I have personally been witness to such enforcements giving fruitful results in many cantonments in India. I therefore also do not see any reason for better sense not prevailing amongst the larger populace beyond the boundaries of cantonments.

A lot of this also goes true for four wheelers, as use of seat belts should be made compulsory and strict adherence to speed limits as also strict legal actions against defaulters, rash and drunken drivers should be resorted to. At the same time speed checking at highways and high-density urban habitats should be ensured to.

Some of the long-term measures and strategies for ensuring road safety are summarised in sections below.

A very strong advocacy for saving lives and avoiding serious injuries goes in terms of authorized speed limits on various roads and highways. Speed check on various vehicles is a must resulting in traffic calming in high density urban scenario.

Better and safe designs on 4 or 6 lane highways along with alternate route for local or rural transport on various highways to ensure that local traffic does not suddenly merge with vehicles on National or State highways. Provision of service lanes for slow moving traffic would serve this purpose to a large extent.

Vehicle safety is another important feature though one can see a lot of compromises by consumers wherein cosmetic features dominate the choice of customers at the cost of essential safety features.

Along with all the above as focused in the introductory part, the importance of data collection and analysis is a

must to bring in long term meaningful interventions. Therefore we also need to revamp the police data collection procedures on road accidents to ensure availability of good data for proper scientific analysis that would serve as a solid base for policy makers and administrators.

Road Safety Research Centers at state and national levels are a must to have proper collection and analysis. Along with these are also required National and State Road Safety Authorities.

Given the increasing number of figures for road accidents in Uttarakhand, it becomes imperative to have a meaningful and functional Road Safety Authority in place that not only addresses the issues of road safety but focuses deeper into the challenges of road safety aspects in a mountainous terrain in a more holistic manner. Such an authority would function as a nodal agency under which various line departments and many key stakeholders can come to develop short term, immediate and long term measures for road safety. Road designs, safety audits, enforcement of rules, trial test of safe roads, strict enforcement of licensing and renewal procedures, trainings and health of drivers, mass awareness campaigns, search and rescue, optimum functioning of trauma centers, referral and tertiary care of injured are the key aspects that need to be primarily looked into by the authority.

Three vital E's of road safety; i) engineering aspects, ii) education aspects and iii) enforcement aspects, are a must for a comprehensive road safety plan and the earlier one addresses these the better chances are there for a good infrastructure in place to cater for long term mitigation measures for road safety. The same can be delivered through Road Safety Authority in place and the vital role of this body would be to ensure coordination between key departments that include PWD, Education, Disaster Management, Health, Police, Tourism, Transport and others.

उत्तराखण्ड : आपदा, यात्रा व अर्थव्यवस्था

– पीयूष रौतेला

उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था में धार्मिक पर्यटन का विशेष महत्व है। हिन्दू धर्म स्थलों में हरिद्वार व ऋषिकेश के अलावा बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री व यमुनोत्री यहाँ स्थित हैं जिन्हें प्रायः चारधाम के रूप में जाना जाता है। यहाँ सिखों के हेमकुण्ड साहिब व रीठा साहिब हैं तो मुस्लिमों के कलियर शरीफ।

हर साल लाखों की संख्या में श्रद्धालु देश-विदेश से यहाँ आते है और तीर्थाटन व पर्यटन से जुड़े व्यवसायियों को चारधाम यात्रा अवधि का विशेष रूप से इन्तजार रहता है। उच्च हिमालयी क्षेत्र में अवस्थित होने के कारण चारधाम व हेमकुण्ड साहिब की यात्रा अवधि अत्यन्त सीमित होती है, परन्तु इस सीमित अवधि में ही व्यवसायी अच्छा - खासा कमा लेते है।

इस अवधि में स्थानीय निवासियों को भी रोजगार व कमाई के पर्याप्त अवसर मिल जाते है और पहाड़ में खेती - बाड़ी से होने वाली सीमित आय के बावजूद उनका जीवन - यापन मजे में हो जाता है। यात्रा अवधि में छोटे कस्बों में भी यात्रियों का जमावड़ा और खाने - ठहरने के लिये होने वाली मारामारी आम बात है। तभी तो होटल, लॉज व ढाँबे वाले यात्रा से पहले अपनी सुविधाओं को चमकाने के लिये निवेश करने में जरा भी कोताही नहीं बरतते हैं। आखिर में उन्हें उनके निवेश पर भारी लाभ मिलना जो सुनिश्चित होता है।

पर जून, 2013 की आपदा ने पूरे परिदृश्य को एक झटके में बदल कर रख दिया। टी.आर.पी. के खेल में देश - दुनिया में उत्तराखण्ड की ऐसी तस्वीर पेश की गयी कि पर्यटकों व श्रद्धालुओं ने क्षेत्र से मुँह ही मोड़ लिया। पानी का सैलाब, दरकते - गिरते मकान, फँसे पड़े लोग, बहती बस्तियाँ, गुमशुदा लोग, मौत का तांडव, स्थानीय लोगों का अमानवीय व्यवहार, प्रशासन का निष्ठुर चेहरा, विवश व लाचार व्यवस्था - क्या नहीं दिखाया गया?

इसमें से कुछ को, कुछ स्थानों व समय के लिये तो सत्य माना जा सकता है पर यदि केवल टी.आर.पी. बढ़ाने के खेल में पिछले सालों के वीडियो भी चला दिये जायें तो उसे उत्तरदायित्वपूर्ण पत्रकारिता नहीं कहा जा सकता है। महीने भर तक 16 से 18 जून, 2013 के

फुटेज चला-चला कर जनमानस के दिलो - दिमाँग में उत्तराखण्ड की ऐसी तस्वीर अंकित कर दी गयी कि वो यहाँ का रूख करने से पहले सौ बार सोचने - विचारने पर मजबूर हो जायें।

यहाँ जून, 2013 में घटित आपदा के उपरान्त सुदूर दक्षिण, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र व अन्य स्थानों से आने वाले शुभचिन्तकों और मित्रों के फोन केवल यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि हम देहरादून में सपरिवार सुरक्षित व सकुशल हैं। उन्हें आश्वस्त करना सरल नहीं था कि यहाँ पर सब ठीक - ठाक है और उत्तराखण्ड का कुछ भाग ही आपदा से प्रभावित हुआ है। टेलीवीजन की रिर्पोटों को देख कर जैसे वो मान बैठे थे कि पूरा का पूरा उत्तराखण्ड लगभग बह ही गया है।

उस समय जो हुआ सो हुआ पर एक साल बाद आपदा की बरसी के नाम पर फिर वही शुरू कर दिया जाये तो उसे क्या कहा जाये? पिछले महीनों में दो बार पहाड़ की ओर जाने का मौका मिला। सुनसान पड़ी सड़कें, यात्रियों की बांट जोहते थक गये बदरंग, अधखुले व बन्द पड़े होटल, लॉज व ढाबे कहानी बयाँ करने के लिये काफी थे। वैसे तो यात्रा अवधि लम्बी होती है पर मई व जून में यात्रियों की आमद अपने चरम पर होती है। मौसम का ठीक - ठाक रहना, मैदानी क्षेत्रों में गर्मी का चरम पर होना व स्कूल, कॉलेजों की छुटटियाँ होना इसके प्रमुख कारण हैं।

इस साल के इन दो महीने के आँकड़े देखें तो आपदा प्रभावित वर्ष 2013 सहित विगत तीन सालों के आँकड़ों के सापेक्ष विभिन्न तीर्थस्थलों में तीर्थयात्रियों की संख्या में 81 से 94 प्रतिशत तक की गिरावट दर्ज की गयी है।

जैसा कि आप समझ ही गये होंगे 94 प्रतिशत की गिरावट केदारनाथ में दर्ज की गयी है। ऐसे में प्रतिदिन केदारनाथ जाने वाले केवल दो - ढाई सौ लोगों से रोजगार की उम्मीद कर रास्ते में ढाबा या दुकान लगाना समझदारी तो है नहीं, पर ऐसे में स्थानीय अर्थव्यवस्था को जून, 2013 से लगे ग्रहण से बाहर निकालना भी तो सरल नहीं है। सरकार की ओर से पर्यटन अवसंरचना विकास हेतु सब्सिडी दी जा रही है, कर माफ किये जा रहे हैं, ब्याज दरें कम की जा रही हैं और तीर्थयात्रियों व पर्यटकों को वापस इस क्षेत्र की ओर खींचने के लिये प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। परन्तु जब तक यात्रियों की संख्या में बढ़ोत्तरी नहीं होती है इन योजनाओं से सब्सिडी का लाभ लेने वाले तो कई मिल जायेंगे पर गम्भीरता से काम करने वाले इनसे दूरी बना कर

		2011	2012	2013	2014	प्रतिशत कमी
बद्रीनाथ	मई	225558	4138812	238116	53798	81.6
	जून	398260	358662	251808	42676	87.3
केदारनाथ	मई	245821	298182	149689	13823	94.0
	जून	249386	196830	182551	14091	93.3
गंगोत्री	मई	146870	195618	105617	20193	86.5
	जून	233190	175272	104136	15656	90.8
यमुनोत्री	मई	170126	206545	115786	15316	90.7
	जून	196833	142182	136997	13709	91.4
हेमकुण्ड साहिब	मई	-	-	12430	4071	67.2
	जून	257133	178049	61867	19466	88.3

ही रहेंगे।

ऐसे में आवश्यक हो जाता है कि क्षेत्र में अवसंरचना विकास के साथ ही वर्तमान तक किये गये कार्यों व उपलब्धियों को लोगों के सामने लाया जाये। तभी हम एक बार फिर से उनका विश्वास जीत पायेंगे। और उसके बिना वो आसानी से यहाँ आने से रहे।

हम अपनी तरफ से प्रयास कर रहे हैं और हमारे प्रयास गम्भीर भी हैं परन्तु हमें यह समझना चाहिये कि सरकारी विज्ञापनों पर आज कोई विश्वास नहीं करता। हर कोई इसे सरकारी प्रोपागण्डा करार कर देता है। अत: उचित होगा कि संचार माध्यमों को क्षेत्र में किये गये व किये जा रहे कायों की स्वतंत्र व निष्पक्ष रिपोटिंग के अवसर प्रदान किये जाये और उन्हें वांछित सूचनायें उपलब्ध करवायी जाये।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि रिपोर्टिंग मिडिया कर्मी की मजबूरी है और प्रतिस्पर्धा के इस दौर में उन पर भी अनेकों दबाव हैं। ऐसे में यदि सही खबर तथा तथ्यों से उनको रूबरू करवाया जाये, उनको क्षेत्र भ्रमण के माध्यम से किये जा रहे कार्यों को देखने समझने के मौके दिये जायें तो निश्चित ही सुधार हो सकता है।

अभी तो राहत - पुनर्वास का दौर चल रहा है। अभी लागों के पास पिछली बची पूँजी के साथ राहत में मिली राशि भी हो सकती है पर यदिइ सअ ोरअ पेक्षितध यानन ि दयाग यात ोि स्थतियाँग म्भीरह ो सकती हैं।

Option of direct cash transfer of disaster relief

-Sweta rawat

A disaster strips affected people of their resources; natural and accumulated assets, and destabilises the safety net of their community support. The event leaves them reeling without anything to hold on to. In such a scenario, providing them with relief money and compensation, along with relief materials, solves a lot of

problems and also gives them the freedom to use the money as they find suitable.

As has been the procedure adopted by the state government the relief to the disaster-affected population is routed through the Revenue Department due to its reach to the village level.

Patwaris, the land record officers, are the base of this system of revenue collection and maintenance of land records. The system was established by Shershah Suri and later revised, amended and passed on to us after independence. Patwaris are often accused of corruption and hera-pheri in the records. When they become in-charge of distributing the relief money after a disaster, they often inflict more pain to the already troubled.

After the Uttarakhand floods of 2013, some instances have been reported where the Patwari charged a commission from the disaster affected in lieu of release of their relief money. Desperate villagers had no choice but to oblige. In this process there is pilferage of a lot of money. A solution to it, it seems, is to deposit the money directly in the individual bank accounts of the beneficiaries.

Limited reach of the financial institutions could well be an argument for not doing so but the fact remains that majority of hill population, even in the remotest villages, maintain a saving account either in bank or in Post Office. If the state government decides in favour of direct cash transfers of disaster relief into the bank or Post Office accounts of the affected people, it would, for sure, plug this pilferage. For cases where the individuals do not have a bank account, one can be opened for them. An accompanying benefit of this measure would be enhanced coverage of banking services.

Cash Transfers (direct and indirect) has been used in many humanitarian aid situations in various countries and various schemes have been worked out for the same. These include i) Unconditional cash transfers whereby people are given money as a direct grant with no conditions or work requirements. There is also no requirement to repay any money, and people are entitled to use the money as they wish. ii) Conditional cash transfer where the agency puts conditions on how the cash is to be spent; for instance stipulating that it must be used to pay for the reconstruction of the family home. Alternatively, cash might be given after recipients have met a condition, such as enrolling children in school or having them vaccinated. This type of conditionality is however rare in humanitarian settings. iii) Vouchers which could be a note, token or electronic card are given

to the identified beneficiaries and the same can be exchanged for a predefined quantity or value of goods, denominated either as a cash value (e.g. Rs. 500) or as predetermined commodities or services (e.g. 5 kg of wheat and 10 kg of rice). Vouchers are redeemable with preselected vendors or at 'voucher fairs' set up by the implementing agency. iv) Cash for work whereby the payment (in cash or vouchers) is provided as a wage for work, usually in public or community programmes.

The above types of cash transfers encompass all the situations and phases of a disaster. When talking specifically of the post-disaster relief for the lives lost, the missing, livelihoods lost and houses affected, there are various methods of distribution employed. These range from in-person delivery, to issuing cheques and depositing directly to bank and post office accounts of the individuals.

There are however certain distinct advantages of direct cash transfers to individual bank accounts. These include i) ability of recipients to withdraw cash throughout the year for seasonal expenses, ii) recipients not charged with responsibility of carrying large amounts in cash, iii) increased opportunity to save money, iv) minimizes chances of fraud and pilferage, v) increased coverage of formal banking system, vi) avoids long queues at distribution sites, vii) cost-efficient due to low transaction and logistics costs and viii) low visibility of the implementing organization, therefore decreased security risks.

Despite all the benefits summarised above the process is not hassle free and requires a lot of hard work and effort. For ensuring cash transfer to the accounts of beneficiaries the banks and other financial institutions would have to invest resources for establishing appropriate transfer mechanisms and in some situations these might well be reluctant to set up individual bank

accounts for small amounts of money. Time and resource would at the same time be required for authenticating correct transfers to individual account. Opening of accounts might take time, especially in case the beneficiary has lost documents in the disaster. Moreover the ones reluctant in opening accounts might well be left out.

Government of India has already linked AADHAAR, a unique identification number for each citizen, with various social welfare schemes for directly transferring the benefits under the welfare schemes to the beneficiaries. It is not just convenient but also reduces the management costs. Government is using this method for disbursing scholarships, as also for providing food and LPG subsidy.

Similarly, this process can also be applied to distribute relief amount to the disaster-affected persons. Besides minimising the possibilities of pilferage this would ensure that full compensation reaches the deserving ones and that too in time.

वह तोड़ती पत्थर, पन्त गाँव के पथ पर

-एम. पी. एस. विष्ट

जब भी मैं गुजरता इस राह पर
अक्सर मैं देखता उसे अपनी गाड़ी से झाँक कर।।
सड़क किनारे बैठी पत्थरों के बड़े से ढेर पर
क्षीण हाथों से हथौड़े की एक-एक चोट कर।।
पल भर में बड़े-बड़े शैलखण्डों को तोड़ कर
एक वृद्धा थी कुछ इस कदर अपनी ही धुन पर।।
कल जब मैं अकेले ही था अपने सफर पर
गाड़ी रोकी और पूछ ही डाला हाल वृद्धा का।।
हे माँ! आखिर कौन सी मजबूरी है आपकी
जीवन के इस अन्तिम पड़ाव पर।।
नन्हें-मुन्हें और नौनिहालों ने चलना था
जिन वृद्ध हाथों की अंगुलियों को पकड़ कर
पथरा गये वे ही हाथ
इन बड़े-बड़े शैलखण्डों को तोड़ कर।।
माँ बोली! बेटा, बड़ी ही कठिन है जीवन की ये डगर
कई उतार-चढ़ाव देखे हैं जीवन की इस दहलीज पर।।
सींचा था जिन खेत-खलियानों को
इन कर्मठ हाथों ने जीवन भर
आज नहीं रहे वे इस धरा पर।।

खिलाया था जिन नौनिहालों को इन वृद्ध हाथों ने
और किया था बड़ा जिन्हें पाल-पोस कर
छोड़ कर चले गाँव को
वे निकले अपनी डगर पर।।
क्या करू, अब खाली रहा नहीं जाता
और ये गाँव है कि छोड़ा नहीं जाता
एकांकी जीवन बसर कर रही हूँ
इन शैलखण्डों को तोड़ कर।।

(कवि एच.एन.बी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर में भूगर्भ विज्ञान विभाग में प्रोफेसर हैं)

Right to Education

- Rahul Jugaran

Human life, indisputably considered the best gifts that God or nature has bestowed upon us, cannot be led to futility. Rather than just engaging in mundane wishful pursuits, it needs to be made more meaningful and holistic. Unfortunately, a simple statement like this is sure to sound philosophy to many in today's world.

Human life is considered to be essentially consisting of two vital aspects; biological and socio-cultural. As can be easily made out, while the first is essentially realized in many aspects with food, water and our contribution towards continuity of human race, latter is more deep and substantial and can be realized only by attaining education, knowledge, understanding and wisdom.

As Swami Vivekananda once said, "The goal of all human existence is attaining knowledge". He at the same time also observed, "Unfortunately the education that you are receiving now in schools and colleges is only making you a race of dyspeptics (irritating race, grouchy-irritable and bad tempered, grumpy). You are working like machines merely and living a jellyfish existence."

At one time the nation called Bharat was referred to as sone ki chidiya by the whole world; rather than material wealth that it might connote, the world actually recognized Bharat for its knowledge and wisdom, its gurus and numerous institutions of the repute akin to Takshashila and Nalanda. The tradition of ashrams and the guru-shishya parampara is accepted as being amongst the best in the world. Arthashashtra and Panchatantra are today considered to be amongst the world's best treatise on polity, management and ethics.

A time traveller might well wonder as to what has gone drastically wrong with the present education system. Like him, I am sure; a lot of academicians, intellectuals and scholars would also surely be bothered about the present state of affairs. At this juncture we should really have no hesitation in accepting that the system presently being followed for educating our upcoming generations has no remnant, what so ever, of our traditional educational system. It is nothing more than the legacy of British Raj; established with an objective of churning out individuals with absolute loyalty to the crown and mental capacities to undertake clerical babu like jobs without raising a single question on the subjugation of their own nation.

It has really been long since we have seized to be the dominion of British Empire but we have failed all through to relieve ourselves from the shackles of British Raj. Is it not strange that more than 66 years down the line post-Independence we are still pursuing the same educational system that was designed to produce officials that could help subjugation to the Crown. So there should really be no surprise if our educational system is merely producing manpower just for routine output oriented industries.

One can correct me if our present education system is ensuring something more than this. Most are not engrossed in a meaningful engagement, are not competent of having a vision beyond one's selfish and shortsighted existence. Is it really going to contribute gainfully towards nation building and towards retaining its potential of being a world's spiritual, scholastic and intellectual leader?

Moreover one can logically raise a question that if we even after decades of the departure of British from our land are religiously following a system laid down many-many decades before their departure and for the attainment of an altogether different goal, are they also adhering to the same in their land. We would be frustrated to note that the Britishers have long back reviewed, revised and upgraded their educational

system. What then desists out educationalists from advocating and bringing forth changes in our system? Changes that are suited to our ground realities and are pertinent to our present requirements.

Sometimes I really wonder if we have ever made a genuine effort towards understanding the true meaning of the word education in its pure and holistic sense. The way things are going on, the education sector seems to have been transformed into an industry, with lalas running the institutes like a grocery shop or factory to ensure handsome returns on their investment out of their gallas. Whether or not the institutes genuinely justify their assumed noble roles is not a matter of concern because both, the owners and the learners, are equally ignorant of the role education can play in the development of an individual, society and a nation as a whole.

Mushrooming of medical, engineering, B.Ed. and business colleges in the previous two decades only reflects the degrading and deteriorating quality of output in an environment where one can easily become a doctor, teacher or an engineer as per ones dreams for which one had only dreamt and not worked hard at all.

Hefty amount of donations and admission fees ensure tight grip of the education mafia on the system and the same desists it from taking decisions related to education policy and establishment of institutes on ground. This at the same time promotes equally incompetent human resource, devoid of knowledge and moral values, to represent such noble professions. The result is quite obvious in terms of what we see in the pathetic degradation and commercialization of all these professions.

At the same time when we very often discuss about both access to and quality of education, we however do not

even count a large section of our society that we have neglected for far too long and they do not even figure vaguely in our memories as we slowly but comfortably proceed towards a developing society.

The grand disposition of MLAs in the State Assemblies and that of MPs in the Parliament further diminishes any hope and one never expects them to even think and move towards framing policies with long-term vision or intent for the good of the long neglected and victimized educational system of our nation.

We have to think over what Swami Vivekananda said, "The present system of education is all wrong. The mind is crammed with facts before it starts to think. Control of the mind should be taught first." He added that, "The education which does not help the common mass of people to equip themselves for the struggles of life, which does not bring out the strength of character, a spirit of philanthropy and the courage of a lion; is it worth the name."

आफत के बदरा

–सुशील खण्डूरी

जम के बरसे आफत के बदरा
नदियों को लहुलुहान कर गये।
बिजली संग शिलाओं पर गिर कर
रूहों तक को पार कर गये।
मलबे को समन्दर में तब्दील कर
मंदिर को शमशान कर गये।
लोगों की खिलखिलाती हँसी को
पल भर में तार – तार कर गये।
शिव का महाताण्डव कहलाकर
आस्था पर भी वार कर गये।
जाते–जाते सदियों के लिये
हर धड़कनों में घाव कर गये।
जम के बरसे आफत के बदरा
नदियों को लहुलुहान कर गये।

Recurring disasters in recent years and relevance of traditional practices

- Piyoosh Rautela

Disasters have been no new event for Uttarakhand that is inherently vulnerable to a number of hazards. During the previous some years, particularly during the monsoon period, the state has however witnessed extreme hydro-meteorological events that caused extensive damage. Though the area affected and magnitude of the losses in the years 2010, 2012 and 2013 vary significantly, close scrutiny of the events reveal that the underlying phenomenon as also nature of losses were strikingly similar. There were flash floods and debris slide in the catchment of major rivers after cloudburst like event and the ensuing losses were largely distributed in a linear fashion along the course of streams and rivers. Though the human life loss in 2013 was significantly high, and the same is attributed to large human agglomeration in the area affected by disaster, other losses in these disasters were comparable.

Sl. No.	Item	2010	2012	2013
1.	Period of occurrence	– ––	August – September 2010	June 2013
2.	Number of affected districts	13	02	13
3.	Worst affected districts	13	02	05
4.	Name of the worst affected districts	All the 13 districts of the state	Rudraprayag Uttarkashi	Rudraprayag Chamoli Uttarkashi Bageshwar Pithoragarh
5.	Number of villages affected (habitations)	9,162	129	1,603
6.	Population affected (in lakh)	29.24	0.84	> 5.0
7.	Permanent loss of land (in ha)	2,35,160		11,482
8.	Cropped area affected (in ha)	5,02,741		10,899
9.	Fully damaged pucca houses	1,492	186	2,119
10.	Fully damaged kutcha houses	3,134	07	394
11.	Severely damaged Pucca houses	5,416	157	3,001
12.	Severely damaged kutcha houses	2,039	00	360
13.	Partly damaged houses (pucca + kutcha)	8,964	302	13,435
14.	Huts damaged	2,806	00	471
15.	Human lives lost	214	81	169
16.	Human beings missing	00	06	4,021
17.	Persons with grievous injuries	87	27	86
18.	Persons with minor injuries	140	00	150
19.	Big animals lost	713	167	3,280
20.	Small animals lost (sheep etc)	1,058	370	7,811
21.	Poultry (birds) lost	1,810	00	6,747
22.	Damage to public properties (in Rs. crore)	22,568	857	13,844

Recurring disasters, as also increasing toll of these, bring forth the dilemma of development being faced currently by the region. It needs to be remembered that what happened in the previous years has in no way been a new phenomenon for this region. If the losses are on the rise despite the phenomenon not being new to the region we

are certainly missing something. We are perhaps not doing what our ancestors traditionally used to do and the same might not be deliberate.

The inhabitants of this region had certainly been taking recourse to measures that ensured minimal losses from such incidences. This however required understanding of the hazards that have been common in this region along with a well framed strategy for warding off the threat. Based upon accumulated knowledge of generations they were successful in framing rules for ensuring disaster safety and ensured their compliance by intelligently integrating these with the precepts of little tradition, culture and religion.

Based upon analysis of the losses incurred in recent disasters it is not hard to deduce that increasing losses due to disasters in the area are largely owed to continuous neglect, ignorance and even defiance of traditional practices. It therefore becomes pertinent and worthwhile to review various disaster mitigation practices of the region and assess their relevance in present times.

Landslides and floods: The people residing in the hills clearly understood the correlation between excessive rains, saturation of soil mass and occurrence of landslides as also recharge of groundwater and spring yields. So, in order to restrict the build up of pore water pressure, particularly in the vulnerable locations these people resorted to disposal of rainwater into drainage channels located in close proximity through a network of jungle guls (canals) constructed and maintained for this very purposes in the upper reaches of these identified vulnerable locations. Remnants of these jungle guls can be seen around Ransi and other places in Madhyamaheshwar and Kali Ganga valleys.

Though done primarily for augmenting agriculture area and perhaps with scant regard to landslide mitigation, terracing of hill slopes has improved the stability of the hill slopes.

The people at the same time left the far flung agricultural terraces, that are hard to manage during monsoons, without bunds. This is part of the planned strategy of the people of this region to rule out possibility of stagnation of water in these and thus to avoid chances of landslides.

Despite the economy of the region being traditionally dependent upon pastoralism and agriculture that are mainly practiced in upper and lower valley slopes, people traditionally never settled down in the proximity of streams and rivers. They always settled down over firm ground in the upper and middle slopes even though both the source of water and agricultural lands were located on middle and lower slopes of the valley. The people thus intentionally preferred to settle down at higher locations that were safe from both landslides and flash floods and at the same time provided strategic advantage. This clearly reflects their preference for safety over comfort and convenience.

Settling down away from the streams and rivers would not have been possible without mastering the art of groundwater exploitation, that was a breakthrough in growth of habitations in this rugged terrain.

Earthquake safety: The decision to settle down over stable and firm ground at the same time minimized losses during an earthquake. Together with this the people through their accumulated knowledge, experience and experimentation devised a set of rules for site selection and construction of structures so as to ensure safety of these during an earthquake event. Without this, construction of multi storeyed houses that are quite common in Uttarakhand, which is testified by the existence of four separate words for four storeys of the house in both the local dialects of the region (Kumauni and Garhwali), would not have been possible.

The inhabitants of this region based upon their experience and accumulated knowledge could comment on the suitability of the site selected for construction based on the observation of physical properties of the soil from the proposed site of construction. This is akin to adjudging the bearing capacity of the site and is in practice even today.

Rules were also put in place for the foundation of the structures. The foundation was dug until firm ground or in situ rocks were reached and the same was left exposed for some rainy seasons. This ensured ground settlement and kept the structures free of settlement cracks.

Layout of the structure, that is an important consideration for earthquake safety, was kept simple rectangular or square and the size of the openings was kept small and at the same time their number was limited. Besides earthquake safety this ensured energy conservation.

For ensuring safe transfer of earthquake forces to the ground and to ensure ductility in the structures provision of wooden beams was provided in the structures.

Drought: Besides earthquake, flash flood and landslide the region is vulnerable to droughts as agriculture in the region is dependent upon atmospheric precipitation. Traditional scattered landholding pattern of the region

ensured that all the households have at least minimal returns in case of crop failure in a particular area.

Moreover the people developed crop varieties that could sustain prolonged spells of water deficit. The people at the same time developed animal breeds that could sustain the rigors of nature and survive sustainably on bare minimal input.

Present scenario: The inhabitants of this region thus set ground rules for disaster mitigation that ensured flourishing human settlements in this region despite adversities put forth by nature. We were in fact fortunate to have inherited this rich treasure trove of accumulated knowledge of generations. Overview of the disasters that have become frequent in this region clearly shows that traditional rules, particularly those of habitation and construction are being flouted.

In the previous few decades we have forgotten these rules or, may be, burgeoning economic compulsions have forced us to forego these. With clear disregard to the threat of floods and landslides we have consciously chosen to initiate developmental initiatives over river terraces and low lying areas that were hitherto reserved only for cultivation. This decision judiciously saved the cost of site development and material transportation but then it was a major compromise on safety and we are repeatedly paying huge price of it.

In case sustainable management of disasters in the region is intended one has to take stock of the traditional practices of the region and amalgamate these with modern knowledge so as to put forth locally relevant practical solutions. Appeal to little tradition of the people can help in popularization of these measure

त्रासदी

–योगम्बर सिंह रावत

आस्था खण्ड, विश्वास खण्ड
उत्तराखण्ड, खण्ड – खण्ड
काटे पेड़ और फोड़े बम
अब भोग दण्ड – दण्ड।

भागीरथी उदण्ड
मन्दाकिनी उदण्ड
शिव प्रचण्ड – प्रचण्ड
त्रस्त उत्तराखण्ड।

मत छेड़ कुदरत को
मत कर खण्ड–मण्ड
रहने दे उत्तराखण्ड को
अखण्ड – अखण्ड।

मानव! तू चला हेमकुण्ड
साथ चला तेरा घमण्ड
नतीजा देख लिया तूने
हुआ तेरा घमण्ड खण्ड–खण्ड।

फिर फूटेगा बादल
फिर टूटेगा हेमकुण्ड
फिर रोयेगी मानवता
फिर होगी गंगा उदण्ड।

आओ सोचें और विचार करें
कि कैसे रहे धरती अखण्ड
जीवन अखण्ड
साँसें अखण्ड।

पवन चले झूम–झूम कर
और गंगा बहे मन्द–मन्द
यही प्रार्थना है ईश्वर से
देव भूमि रहे अखण्ड–अखण्ड।

(कवि एक सेवानिवृत्त समुद्री अभियन्ता है और वर्तमान में कोटद्वार स्थित मालिनी वैली कॉलेज ऑफ ऐजुकेशन में निदेशक हैं)

Greening the disaster relief

- Sweta Rawat

A disaster causes upheaval in the lives of the people affecting their access to basic necessities such as food, shelter and water and sanitation. Easy and adequate availability of clean drinking water is a major issue in post-disaster phase. In case effective measures are not resorted to for ensuring availability of safe drinking water the condition of the disaster-affected population is likely to aggravate with the spread of epidemics and diseases. A quick look into the post-2013 flood data of disease outbreak in Uttarkashi district reveals that most reported illnesses and deaths relate to diarrhoea, vomiting and scrub typhus. All these are attributable to poor access to clean drinking water and sanitation.

It therefore seems imperative to include clean drinking water in the relief materials dispatched to any disaster-affected area along with the food packets. Plastic being lightweight and impermeable, is often used for packaging drinking water. Despite these useful properties, the plastic bottles along with other plastic packaging material usually end up in rivers and landfills leading to environmental pollution. Made of PET -

polyethylene terephthalate, these bottles are not biodegradable and take 500-1000 years to degrade. Better alternatives for food and water packaging are therefore required to be explored for reducing the use of these environmentally unfriendly materials.

Apart from being directly toxic, chemicals present in plastic substances are known to cause cancer, endocrine disruption, birth defects and genetic changes. When plastic containers are used for food and drink storage, very minute bits of plastic get leached into the contents.

These environmental and health hazards of plastic get amplified during a disaster as plastic substances are heavily used in relief and reconstruction works. During 2013 floods, huge volume of plastic waste ended up in rivers and none reached the recycling plants.

Similarly post-disaster reconstruction phase can be made greener by adopting measures that utilise less of poly-vinyl chloride (PVC); another non-biodegradable substance similar to polyethylene but more harmful when disposed. PVC is very often used in the manufacture of pipes, line insulation, fittings and home furnishings. Burning it releases even more poisonous waste.

Plastic waste can however be recycled but then there is just one such operational plant in Uttarakhand and its capacity is inadequate to handle the entire plastic waste generated in the state. This recycling plant was setup in Kathgodam in 2010 and according to the media reports it is not operating satisfactorily; mainly due to interrupted electricity supply and voltage fluctuations. Its predecessor, a plastic densification and flaking plant in Srinagar (Garhwal) that was setup in 2005, met with a different fate in 2009 when it was shut down owing to the unsupportive and short-sighted policy decisions.

Moreover, there is no large-scale organised waste collection system in place in the state. Though, an attempt in this direction was made through launching a pilot project on participatory waste management in the Valley of Flowers in Chamoli.

Facts make it evident that recovery and recycling capacity of the state government is not sufficient to manage the vast volume of plastic waste generated by us. Various methods employed presently for the disposal of the waste material leads the plastic waste either to the landfills or to rivers and streams. This is neither conducive to environment nor to health. More than anything else what we can do is to reduce the use of plastic.

We can easily reduce our use of plastics not only during a disaster but also in our routine life by adopting alternative solutions. During a recent interaction with the inhabitants of Didsari village in Uttarkashi, a lady recollected the abundance of water (though muddy) during previous year's floods and also how batches of spoiled relief supplies were thrown away in the river. She gave a simple yet admirable solution of providing them with water filters instead of water bottles during any such calamity.

This simple solution can well be adopted by us for our routine meetings, workshops and seminars in which we produce large volume of plastic waste. Besides being sustainable use of water filters would at the same time ensure cost effectiveness. Transporting a water filter would incur the same cost as would a couple of packaged water bottles. But, upon a cost-benefit analysis the usefulness and environmental benefits of using water filter would far exceed the use of bottled water.

Another solution is the use of filter jerry cans and filter water bottles. These come with a water filter system inbuilt into them and therefore these easily last for multiple uses.

हे ! बेदर्द मानव.....

–शम्भु प्रसाद भट्ट

हे बेदर्द मानव ! संभल जा
क्यों मारता निरीह प्राणियों को
अन्याय कर दु:ख देता प्रभु आत्मा को
हे बेदर्द मानव.....।।

विचलित कर प्रकृति को आपदाओं का ज्वार बढ़ाया
वन्य जीवों का आखेट कर शेर को घर–गाँव बुलाया
हे बेदर्द मानव.....।।

अपनापन छोड़कर हमें सताता है
क्यों निर्भीक होकर वन में आग लगाता है
हे बेदर्द मानव.....।।

प्रकृति के सब जीवों का अधिकार तूने छीना है
वन में आग लगाके तूने सताई अपनी आत्मा है
हे बेदर्द मानव.....।।

विकास के नाम पर अनैतिक दोहन किया है
जीवन अस्तित्व तूने अपना ही गंवाया है
हे बेदर्द मानव.....।।

हे मानव! अपनी बेरहमी को तैयार हो जा
असमय मौत से बचना है तो प्रमु-स्मरण करता जा
हे बेदर्द मानव.....।।

वन हैं तेरे जीने का खजाना
कभी ना इसे फिर तू सताना
हे बेदर्द मानव.....।।

पर्यावरण के हम वन प्रहरी सुन्दर धरती है यह देन
हरा-भरा जीवन हम देते दृश्य सुहाने देखते नैन
हे बेदर्द मानव.....।।

स्वयं प्रभु वन में ही रहता
पहचान इसे यदि तू पूजा करता
हे बेदर्द मानव.....।।

डर उससे जिसने हम सभी को रचाया है
क्यों देता चुनौती उसको वह विनाश भी कर सकता है
हे बेदर्द मानव.....।।

(कवि नन्दादेवी बायोस्फियर रिजर्व, गोपेश्वर के रहने वाले हैं)

Transform the education system

- Rahul Jugaran

Despite all development and progress still today millions in this nation do not have access to any form of education and mass marginalization of these people, it seems, has finally put some good sense in the minds of our policy makers to frame a system for all people of this nation to have access to education as a right. Right to Education (RTE), as we know it, was actually recommended first in 1990 by the Acharya Ramamurti Committee.

Despite Supreme Court directions to provide clean toilets and potable water in every school, government or private, schools in large numbers are being operated without these facilities. Lack of bare minimum facilities in schools has left parents with little choice and they are forced to enroll their wards in schools, mostly private, charging handsome amounts as fees and other expenses. Enrolment figures in government schools as against private ones are a real eye opener.

Despite large spending on educational sector, it is a hard fact that masses are not interested in getting their wards educated in state run institutions and this fact is testified by high dropout rates in government school. Poor infrastructure can well be cited as one of the reasons for the same.

Only 4.8 percent of the government schools are reported to have all basic facilities made mandatory for schools under RTE. These include playground, library, separate toilets, potable water, computers, electrification of school building and ramp for disabled children.

Out of 13 crore children that enroll every year in primary school, the numbers drop down to 5.5 crore at secondary level and then to 2.8 crore by High School level. It is an irony that barely 1.6 crore manage to continue till Intermediate standard. And by the time one cares to takes count of higher education the figure become as abysmal; mere 11 percent of total primary school enrolment i.e to say 11 percent of 13 crore that works out to be 1.43 crore approximately. Now the obvious question remains as to who gets left behind; certainly economically and socially backward sections of society. This left behind lot is dominated by fairer sex who bear the burnt of gender discrimination.

There is no simple explanation but the fact remains that the government's priority for education 66 years down the line has not been encouraging and the assertion can be backed up with the figures of Central and State

expenditure on education; 3.8 percent of GDP for 2010-2011.

Many academicians opine and ground realities of education institutes reveal the bitter truth. How well it can be improved with RTE remains to be seen. But the fact remain that 20 lakh teachers are required for implementation of RTE and any drive for mass recruitment is sure to compromise on quality as B.Ed. degrees are being awarded by mushrooming private colleges without ensuring any quality. Moreover NCTET results for 2010-11 and 2011-12 reflect the standard of teachers wherein approximately 93 percent failed to clear the examination. It seems we have been trying to get everything in education, but for quality.

As has been said by many scholars including Swami Vivekananda, “To alleviate the poor state or suffering of a common man in our nation, there cannot be any way better than the glowing path of knowledge seeking or education.” As we go about boasting of 90-95 percent of enrolment in schools, quality of education still remains the biggest problem.

Education has to be quality education beginning with quality infrastructure of school i.e. schools buildings, quality teachers, quality curriculum and other basic hygiene and sanitation. We further need to dwell on what the education is delivering and whether it should be the only objective of education or not. The present day formal education lays more emphasis on physical and mental development and learning systems, preparing students only for job market and less on emotional and social development. Someone said it quite correctly, "Knowledge that is not applicable is as useless as the bath of an elephant, which soon after showering itself with water proceeds to shower itself with mud." So far as the parents are concerned, they are the produce of the same system and their shortsightedness alone cannot be over empathized. However at the short term level also, the parents seem to be miserably failing. They often try to make their child live, dream, realize and achieve their aspirations without realizing the individual entity of the child.

Parents need to avoid positive and negative narcissism. Positive narcissism says, "The one thing that I could do is play the violin / guitar. Therefore your must play violin / guitar.” Negative narcissism says, "The one thing that I could not do is play violin / guitar. Therefore you must play violin / guitar.” The challenge is to observe your children very carefully; see what interests and excites them and find ways to help them follow that talent / passion/ curiosity. This definitely needs time and

patience that is fast becoming scarce today.

This does not mean ignoring what is important in school, but it does mean realizing that life in more than school, and that finding one's passion can make the difference between a fulfilling and a frustrating life.

When I go to pick up my son, at times I get confused when I see the over enthusiastic parents scrutinizing the note books of a child immediately after the bell of freedom rings melody into their tiny ears. No sooner than they are released, they find themselves imprisoned again in the cages of intentional or unintentional expectations of their parents.

Not surprisingly, the zealous parents who have left no stone unturned and have also resorted to all possible means to ensure their child's admission in a reputed public school, rarely discusses or is worried about the real education being imparted to their children.

We all want our children to do the best, do well in life and grow up to be successful human beings. There is nothing wrong in the desire; however greater focus rightfully should be on success with the basic values, especially in times of cut throat competition. Be it the competition of making government at state or center, be it of attracting as much patients as possible to a private hospital, be it competition between Coca Cola and Pepsi and be it of climbing the ladder very fast in the corporate sector. As Plato said it in 427 BC, “Strange times are these in which we live when old and young are taught falsehoods in school. And the person that dares to tell the truth is called at once a lunatic and fool.”

Real, meaningful and value based education has always been an instrument of change, developing the young minds and building the nation. Therefore we need to ensure that our awareness in times to come should force the governments to ensure deeper vision and greater

budgetary allocation towards the education sector that has so far been unable to impart quality and meaningful education. The sector that has been highly in favour of the opulent class and is also thus responsible for the ever-increasing divide between the haves and have-nots in this country.

ठीक एक साल बाद......

– पीयूष रौतेला

आपदा के ठीक एक साल बाद विगत साल आयी बाढ़ में जमा मलबा हटाने व नदी को अपने पूर्व की स्थिति में लाने के लिये भारी उपकरण व मशीनें केदारनाथ पहुंचाने का जिन्न एक बार फिर से बोतल के बाहर निकल आया है। वैसे सुनने – कहने को रिवर ट्रेनिंग, नदी के प्रवाह को सामान्य करने हेतु तल से मलबे के निस्तारण जैसे सुझाव काफी तर्कपूर्ण प्रतीत होते हैं और शायद सामान्य परिस्थितियों में ऐसा कियाभ ाीज ानाच ाहिये।प रन्तुय हाँय हस मझनाअ ावश्यकह ै ि क केदारनाथ कोई सामान्य स्थान नहीं है और वहाँ की परिस्थितियाँ अन्य स्थानों से सर्वथा भिन्न है। फिर पिछले साल आयी आपदा के बाद तो उस क्षेत्र की भू–आकृति में कई परिवर्तन आ गये हैं।

मंदाकिनी का पानी अब मंदिर के पूर्व में सरस्वती से हो कर बह रहा है, चोराबाड़ी ताल का अस्तित्व समाप्त हो चुका है और पूरे क्षेत्र में रेत, बजरी और बोल्डरों की मोटी परत आच्छादित हो चुकी है। चोराबाड़ी ताल में फिर से पानी इकट्ठा होने के लिये इसके तल में चिकनी मिट्टी की तह का जमा होना आवश्यक है और यह इतनी जल्दी होने से रहा। ऐसे में कम से कम क्षेत्र में इससे उत्पन्न हो सकने वाला खतरा टल गया है।

केदारनाथ में पिछले साल आये भू–आकृतीय परिवर्तनों को मानवीय हस्तक्षेप द्वारा बदलते हुये पूर्व की स्थिति में लाने के पक्षधरों को इस महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखना चाहिये कि यह परिवर्तन आपदा द्वारा नहीं लाये गये हैं; ऐसा तो बस प्रकृति ही कर सकने में सक्षम है। और फिर प्रकृति के आगे कब, किसका जोर चला है।

कई बार मंदाकिनी के मार्ग बदलने की चर्चा भी की जाती है और नदी को आपदा से से पहले की अवस्था में लाने की वकालत की जाती हैं। सर्वप्रथम तो यह कि नदी का मार्ग बदलना कोई नयी घटना नहीं है। कोसी सहित कई नदियाँ है जो अपना मार्ग लगातार बदल रही हैं। यहाँ तो नदी ने बस एक बार फिर से उसी मार्ग पर बहना आरम्भ कर दिया है जिस पर वह कभी पहले बहती थी।

बड़े–बड़े दावे किये जा रहे हैं और योजनायें बनायी जा रही हैं। साथ में कई नाम–गिरामी एवं प्रतिष्ठित संस्थानों के विशेषज्ञ खड़े हैं जो इन दावों को मूर्त रूप देने का आश्वासन दे रहे हैं। ऐसे में जरूर ही ऐसा कुछ है जो मेरी मंद बुद्धि में घुस नहीं पा रहा है। गणित में मैं शुरू से ही थोड़ा कमजोर रहा हूँ। ऐसे में यहाँ, अवश्य ही, बात तकनीक के गणित से जुड़ी होनी चाहिये क्योंकि मुझे सरल व सहज ज्ञान से जनित तर्क तो सहज ही समझ आ जाते हैं परन्तु तकनीकी जटिलता से लबरेज वाकपटु आश्वासन नहीं।

पर काफी समझाने पर भी दिल है कि मानता नहीं और काफी कोशिशों के बाद भी कुछ प्रश्न अब भी अनुत्तरित ही हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ पानी हमेशा ही भू–आकृतीय निम्न स्तर से हो कर बहता है। जहाँ आज का निम्न स्तर है, पानी वहीं से हो कर बह रहा होगा। ऐसे में जलधारा के मार्ग को परिवर्तित करने के लिये या तो इस मार्ग में अवरोध पैदा करना होगा या फिर जिस मार्ग से हम नदी को बहते हुये देखना चाहिते हैं उसके स्तर को नीचे लाना पड़ेगा। पहले विकल्प पर काम करने के लिये नदी के मार्ग पर संरचनात्मक अवरोध दिये जाने होंगे। सीधे–सीधे कहें तो बंध या दीवारें खड़ी की जानी होंगी।

हाँ दीवारों से याद आया यदा–कदा केदारनाथ मंदिर परिसर को ऊपर पहाड़ी ढाल से लुढ़क कर आ सकने वाले पत्थरों के सम्भावित खतरे से बचाने के लिये भी मंदिर के उत्तर में सुरक्षा दीवार बनाये जाने के सुझाव भी दिये जाते रहे हैं।

इस दीवार के तर्क से मैं सहमत हूँ। मंदिर के उत्तर की ओर ग्लेशियर का मलबा तीव्र ढाल पर अटा पड़ा है। इसमें रेत, पत्थर, बोल्डर सब कुछ है; यदि कुछ नहीं है तो बस आपसी जुड़ाव। यह मलबे का बस

एक ढेर है जो कभी भी नीचे की ओर आ सकता है। ऐसे में सुरक्षा दीवार का सुझाव बेहद तर्कपूर्ण है।

सुझाव तो ठीक है पर उस पर अमल कैसे हो सोचने वाली बात यह है। दीवार मंदिर की सुरक्षा के लिये बनायी जाये या फिर तट की, जब तक उसकी नींव ठोस व स्थिर चट्टान के ऊपर नहीं रखी जायेगी, यह दीवार भी मलबे में पड़े बोल्डरों की ही तरह व्यवहार करेगी और यदि भविष्य में किसी परिस्थिति में केदारनाथ में जमा मलबे में अस्थिरता आती है तो जाहिर है कि यह दीवार भी अस्थिर हो जायेगी।

यहाँय हस् पष्टि कयाज ानाअ ावश्यकह ोगाि कक ेदारनाथक्ष ेात्रम ें किसी भी भारी संरचना की नींव के लिये स्थाई व स्थिर चट्टानों को ढूँढ पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। ऐसे में दीवारों के डिजाइन व प्रारूप पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होगी।

हम मंदाकिनी के जल प्रवाह को पूर्व की स्थिति में लाने पर चर्चा कर रहे थे। संरचनात्मक अवरोध उत्पन्न करके हम निशिचित ही सरस्वती से होकर बह रहे पानी को मंदिर के पशिचम की ओर से बह कर जाने के लिये मजबूर कर सकते हैं। यहाँ इस तथ्य पर ध्यान देना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि इस स्थिति में इस क्षेत्र में बहने वाला पानी भू-आकृतीय निम्न स्तर से ऊपर बहने लगेगा जो कि प्राकृतिक रूप से असामान्य है। और प्रकृति इस असामान्यता को शायद ही बार्दस्त करे। ऐसे में स्वाभाविक है कि भू-आकृतीय निम्न स्तर की ओर भूमिगत जल प्रवाह आरम्भ हो जायेगा। मन्दाकिनी से सरस्वती की ओर होने वाले इस भूगर्भीय जल प्रवाह के साथ केदारनाथ में स्थित मलबे में से सिल्ट व अन्य छोटे कण बह कर निकल जायेंगे। इससे क्षेत्र में भू-धँसाव की प्रबल सम्भावना है और ऐसा ही कुछ वर्ष पूर्व 2007 में चमोली के चाई गाँव में भी हुआ था।

ऐसा होने पर इस क्षेत्र में मंदिर सहित अन्य भवनों की संरचनात्मक सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लग जायेगा। अत: नदी के जल प्रवाह को बदलना इतना सरल नहीं है और इस पर सोच-विचार के बाद ही कोई निर्णय लिया जाना चाहिये।

नदी के प्रवाह को बदलने के लिये दूसरा विकल्प मंदाकिनी के प्रवाह क्षेत्र को भूआकृतीय निम्न स्तर पर लाने से जुड़ा है। सीधे - सीधे कहें तो मंदाकिनी के स्तर को सरस्वती के स्तर से नीचे ले जाना होगा। इसके लिये मदाकिनी के प्रवाह क्षेत्र से भारी मात्रा में मलबे को खोदना, निकालना व उसका अन्यत्र सुरक्षित निस्तारण करना होगा। ऐसा करने पर कई पर्यावरणीय व पारिस्थितकीय जटिलतायें उत्पन्न हो सकती हैं।

परामर्श देने तक तो ठीक है पर ऐसे में केदारनाथ में सहजता से कुछ कह पाना उतना सरल नहीं है। भौगोलिक व मौसम सम्बन्धित जटिलता के साथ ही यहाँ कई अन्य चुनौतियाँ छुपी पड़ी हैं और हो सकता है उनमें से कुछ का हम अभी अनुमान भी न लगा पायें।

Blood Pressure: Hurry, Worry and Curry

- Devendra K Budakoti

I recognize her and saw her by chance
Though not very sure at the first glance
Took a chance by halting and going back
Yes she was the sister seen after years back
We are all busy these days and have made plans
Me going here and there without definite plans
She teaches economics, me a student of social matrix
She researches on issue, me still grappling with dynamics
There was so much to catch up and know
But are all busy with a time table to show
Thought about her while going up the mountain
On meeting we realized our timings to maintain
Years back I heard about hurry and curry
The things to avoid being free from worry
Society has chartered path to be pragmatic
Followers are professional and rebels lunatic
Both in hurry to reach destination
Me on a task and she on a vacation
We are rushing pushing to mission
I still on a drawing board of vision

Restoration of Kedarnath

- Piyoosh Rautela

Ever since the disaster of June, 2013, restarting Kedarnath yatra and restoring the magnificence of the temple township has been the priority of the state. Logically so, this was envisaged to send across positive message amongst the potential visitors that the state has revived from the shock of 2013 disaster and things are fast getting normal. Even though many other parts of the state were adversely affected, the outside world had heard mostly of Kedarnath and therefore the message had to be centred around Kedarnath.

The devastated yatra route has been realigned and constructed afresh and most civic amenities have been put in place. Pilgrims and tourists have already started to respond to the positive gestures of the state and in the days to come the yatra is sure to pick up.

Despite all effort and hard work, a lot still remains to be done; particularly around Kedarnath. Out here it needs to be undestood that Kedarnath is no other place. It is the abode of Lord Shiva who, though appeased quickly, resides in inhospitable conditions renouncing all worldly pleasures.

So reconstruction at Kedarnath cannot be plain and simple as restoring any other place. Weather and terrain conditions in Kedarnath are highly inhospitable and out there nature provides limited window of opprtunity for undertaking restoration works. For the larger part of the year the area is burried under thick pile of snow and work cannot really be done during most of the monsoon season as well when afternoon rains are a regular feature.

The area in the proximity of Kedarnath has at the same time witnessed major geomorphic changes during June 2013 disaster. The palaeochannel of Saraswati to the east of the temple has been rejuvinated and Chorabari Tal to the north of the temple has ceased to exist. Already unconsolidated thick pile of glacial outwash deposit around the temple has been disturbed and thick mass of fresh glacial debris has been heaped over it. Forces of nature have thus carved out new geomorphic setup in the area around the temple and it would take some years for the geomorphology of the area to stabilise.

It is not easy for anyone to accept changes and these are often, wrongly so, potrayed as being our failure. It is therefore natural human urge to attempt restoration

of pre - disaster geomorphic conditions in Kedarnath. But it is not all that simple and specific issues related to restoration of Kedarnath are being discussed separately.

Safety of the temple: Kedarnath temple is the most important structure in the area and safety of the same is of prime concern. To the north of the temple nature has already provided maze of huge boulders that continue for an appreciable distance. There is thus little possibility of rolling down boulders directly hitting the temple.

Moreover breach of Chorabari Tal has removed a major hazard to the north of the temple. Rejuvenation of this lake is not possible in near future as accumulation of clay and silt at the bottom is a precondition for water retention over highly porous glacial deposits and the same is a slow and long drawn process.

Placement of structural barrier to the north of the temple is a logical solution for being doubly sure and further ruling out any possibility of water and debris hitting the temple. It however needs to be kept in mind that any such barrier would only be placed over the heap of loose material as it is not practically possible to reach the valley floor for footing these structures.

In such a condition howsoever strong the barrier be it would move with the debris when forces of nature decide to make the same move. The structural barrier to the north of the temple should therefore be appropriately designed.

But for minor damages the superstructure of Kedarnath temple has survived the impact of rolling down debris and water. The possibility of the temple foundation being disturbed and damaged cannot however be ruled out. The temple platform is now covered with debris and it at present adds to the stability of the superstructure. No attempt should be made to expose the temple platform.

To the extent possible the restoration works in Kedarnath should be done manually. If mechanical excavation

becomes a compulsion it should be ensured that there are no major ground vibrations.

Stream diversion: The disaster of June 2013 has changed the hydrological regime around Kedarnath. Most water of Mandakini now flows through hitherto dry palaeochannel of Saraswati to the east of the temple. This is suggestive of a simple fact that the geomorphic changes have resulted in a new geomorphic low in the Kedarnath area through which most water is presently getting discharged.

Attempts to divert water from this geomorphic low by creating structural barriers is sure to initiate subsurface flow of water towards this geomorhic low. This envisaged east - southeastward subsurface flow of water from Mandakini to Saraswati would result in piping action due to washing away of fines from the matrix of the glacial outwash deposit in the middle of which is located Kedarnath temple. It is to be kept in mind that removal of fines is likely to induce ground subsidence in the glacial outwash deposits and the same may jeopardise the safety of structures built over it, including the temple.

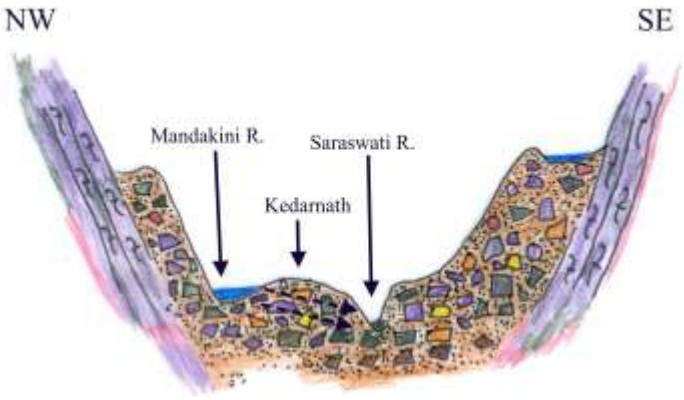

Similar piping action was responsible for severe ground subsidence in Chain village in Chamoli district where subsurface flow of water from Dharmangar nala towards Rauldhar nala resulted in major ground subsidence in 2007.

Forced diversion of water of Saraswati towards Mandakini is thus identified as a risk prone venture. If doing so becomes a compulsion the same should be carried out under expert advise and supervision.

Another solution to this problem is to artificially carve out new geomorphic low along now abandoned channel of Mandakini. Disposal of huge volume of debris generated in this would however pose major environmental challenge and might well initiate new problems.

Bank stabilisation and demolition of structures: In order to rule out any possibility of stream induced damage to Kedarnath temple, appropriately designed bank stabilisation measures should be put in place.

Large number of structures at Kedarnath have either been damaged or filled with debris. Besides posing threat to the passers by, these are not aesthetically pleasing. These should therefore be demolished and no fresh construction should be allowed in this area. Appropriate provisions of Disaster Management Act, 2005 can be invoked for doing this. To the extent possible, debris of the demolished structures should be utilised for bank protection works and the rest should be appropriately disposed off.

Helipad and GMVN site: On the left bank of Mandakini, little downstream of the confluence of Saraswati and Mandakini, steep morainic ridge is observed to run north south. On the glacial terrace at the base of this ridge is located Kedarnath helipad. After the disaster the pilgrim traffic passes through this terrace and Garhwal Mandal Vikas Nigam (GMVN) has pitched tents and erected pre - fabricated huts over this terrace for providing various services to the pilgrims.

It needs to be noted that there exists a major elongated north south running depression between this morainic ridge and valley wall. This depression is just to the east of the helipad and GMVN facilities. It needs to be noted that there is significant impoundment of water in this depression, particularly during monsoon period and water from this depression is observed to flow down from as many as three places along the morainic ridge.

This site is therefore deduced to be not that safe and therefore no permanent structures should be erected at this site. Boulders and others should at the same time not be collected from this ridge for foundation works of the

temporary structures. This is likely to induce instability in the moraines that might have disastrous consequences.

Water level in the depression, which is technically a moraine dammed lake like Chorabari Tal, should at the same time be monitored and self draining pumps should be installed.

Landscaping and river training: No major landscaping and river training works are suggested in the area around Kedarnath as these would further disturb the unconsolidated materials. Moreover safe disposal of the excavated material is going to be a major challenge and if excavated material is not disposed off properly it might induce new problems that might be hard to manage.

Garurchatti: Rock exposures are observed in the area around Garurchatti that has been spared by the disaster of June, 2013. That area on the right bank of Mandakini prima facie looks safe. Possibilities of developing this location for establishing permanent structures should be explored.

नियोजित विकास ही आपदा प्रबंधन

– गोविन्द रौतेला एवं सुशील खण्डूड़ी

''जिन्दगी खूबसूरत और अनमोल है, पर सिर्फ उनके लिए जो इसका मोल समझते हैं''। लेकिन मनुष्य की अनियोजित विकास की जिद देख कर यही लगता है कि अपनी खुद की जिन्दगी का मोल समझना तो दूर रहा, उसे आने वाली पीढ़ियों के भविष्य की भी चिन्ता नहीं रह गयी है। 1991 एवं 1999 के विनाशकारी भूकम्प, 2008 का सूखा, 2010 की अतिवृष्टि, 2012 के भूस्खलन और 2013 में केदारनाथ में आयी अप्रत्याशित बाढ़ यह सिद्ध करने के लिये काफी है कि प्राकृतिक नियम – कानूनों की अनदेखी की हर किसी को भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।

वर्ष दर वर्ष घटित होती आपदाओं के आँकड़ों की लम्बी फेहरिस्त को देख कर तो यही लगता है कि इन घटनाओं से हमने न तो कोई सबक लियाअ ौरन ह ीह मअ पनीअ ादतोंम ेंस ुधारल ानेक ेइ च्छुकह ैं। सीखना–सुधरना तो दूर इन आपदाओं के बाद हमारी अनियोजित विकासक ीभ ूखब ढ़स ीग यीह ै।स ंवेदनशीलप हाड़ियोंस ेल ेकर नदी–नालों तक हर जगह अवैध निर्माण धड़ल्ले से हो रहे हैं। यहाँ तक की राजधानी में ही कई सरकारी कार्यालयों को नदी तल में बना दिया गया है। विगत की आपदाओं के कारण जो संरचनायें जर्जर हो गयी थी और गिरने की कगार पर थी, हमने स्वयं इंजीनियर बन कर उनका उपचार करना शुरू कर दिया और सच में हमारी इस विधा को देख कर कोई भी दाँतों तले अँगुली दबाने को मजबूर हो जायेगा। जीने की इस जद्दोजहद में जिन्दगी बेखौफ हो कर कुछ ऐसे चल पड़ी है कि जैसे पहले कुछ घटित हुआ ही न हो। लेकिन प्रकृति तो प्रकृति है और वह हमारे मिथ्या प्रयासों से बहुत ज्यादा प्रभावित नहीं होती है। वह मनुष्य के कुटिल प्रयासों की सीमा अवश्य तय कर देती है। उसके अपने नियम हैं और समय आने पर वह उन्हें कड़ाई से लागू करती है और अन्त में हम अपनी गलतियों को स्वीकारने के बजाय बेमतलब की बातों पर उलझते व उलूल–जुलूल तर्क देते नजर आते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि बेतुके आरोप–प्रत्यारोप के इस खेल में अगर कोई हाशिये पर नजर आता है तो वो है आपदा प्रबन्धन।

किसी भी आपदा के बाद देखने वाली सबसे मजेदार बात यह होती है कि हर कोई मिल कर आपदा प्रबन्धन की बखिया उधेड़ता दिखायी देता है और इसमें भी जो कमी या कोर–कसर रह जाती है वह मीडिया पूरी कर देता है। फिर आपदा प्रबन्धन का तो हर कोई स्वयंभू एक्सपर्ट है और बिना माँगे राय देने का यहाँ फैशन है। समझ में नहीं आता है कि अगर राय देने वाले इतने ही हमदर्द और सक्रिय प्राणी हैं तो आपदा पूर्व ये कहाँ पाये जाते हैं। ठीक है, संसाधन कम हैं और जितना व जैसे होना चाहिये शायद वह हो भी न रहा हो पर ऐसा भी नहीं है कि साल भर आपदा प्रबन्धन विभाग हाथ पर हाथ धरे बस बैठा रहता है। कुछ धीमें ही सही पर अपने सीमित संसाधनों में वह जो कर सकता है, वह करता आया है और करता रहेगा। पर सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या आपदाओं के प्रबन्धन में अन्य विभागों, संस्थानों, संगठनों व आमजन का कोई उत्तरदायित्व नहीं है? आपदा प्रबन्ध विभाग ने मसूरी, नैनीताल, बागेश्वर, हरिद्वार व अन्य कई

शहरों की भूकम्प घातकता एवं संवेदनशीलता पर महत्पूर्ण अध्ययन किये हैं व कई शहरों के पहाड़ी ढलानों की अस्थिरता सम्बन्धित सर्वेक्षण भी किया है। संस्तुतियों सहित सम्बन्धित आख्यायें काफी पहले ही अपेक्षित कार्यवाही हेतु सम्बन्धित विभागों को उपलब्ध करवा दी गयी थी; पर हुआ क्या? वही ढाक के तीन पात।

देखने वाली बात यह है कि तब तक सब खामोश हैं जब तक सारे कार्य यथावत चल रहे हैं पर भगवान न करे, यदि कल कोई बड़ा हादसा हो जाता है तो आपदा प्रबन्धन की बखिया उधेड़ने में देर नहीं होगी। जो विशेषज्ञ अभी लापता हैं वे उस समय स्वत: ही प्रकट हो जायेंगे।

सभी ने इस बात को एकमत से स्वीकारा है कि आपदाओं पर पूर्ण विराम लगा पाना सम्भव नहीं है किन्तु यह भी सत्य है कि हाथ पर हाथ धरे रहने से न तो आपदायें कम होंगी और न ही भविष्य सुरक्षित और खूबसूरत बन पायेगा। सब जानते हैं कि 53,483 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले इस हिमालयी राज्य का भूगोल अन्य राज्यों से एकदम अलग है। पारस्थितिकीय विषमतायें, भौगोलिक परिस्थितियाँ, जन-जागरूकता व संसाधनों का नितान्त अभाव यहाँ आपदाओं के प्रभावों को हमेशा ही बढ़ाते रहे हैं। ऐसे में राज्य के भूगोल, दूर-दराज अवस्थित बसावतों एवं वहाँ विकसित की जा रही सुविधाओं पर वैज्ञानिक सोच की स्पष्ट छाप दिखाई देनी चाहिये थी। चाहे वह रोड़ हो या अवस्थापना विकास; सबसे पहले आसन्न खतरों का आंकलन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से होना चाहिये, तब जाकर विकास सम्बन्धित गतिविधियों पर कदम आगे बढ़ाये जाने चाहिये।

मात्र संस्थान या विभाग बना कर इतिश्री कर लेने से आपदाओं का प्रबन्धन तो होने से रहा। मजबूत आपदा प्रबन्धन के लिये इसके बुनियादी ढाँचे से लेकर पर्याप्त मानव संसाधन, प्रतिवादन, खोज-बचाव, निष्क्रमण, पुनर्वास योजना, नीति निर्धारण आदि हर पहलू पर गहन विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है। साथ ही आपदा प्रबन्धन अधिनियम में दी गयी व्यवस्थाओं का कड़ाई से अनुपालन भी किया जाना होगा। विकास के नाम पर किये जाने वाले प्रत्येक कार्य में विषय विशेषज्ञों का परामर्श, विभागीय समन्वयन एवं प्रयुक्त सामग्री की गुणवत्ता का विशेष खयाल भी अवश्य ही रखना होगा। हर नवागत सोच को बढ़ावा देना होगा और सबसे बड़ी बात यह है कि आपदाओं की सम्भाव्य स्थितियों के दृष्टिगत पूर्व में जो वैज्ञानिक सर्वेक्षण हुये हैं उनकी संस्तुतियों पर सम्बन्धित विभागों द्वारा गम्भीरता से अमल किया जाना होगा।

यदि ऐसा सचमुच किया जाता है तो हम काफी हद तक आपदाओं के जोखिम को कम करने में सफल हो सकते हैं और आपदाओं के जोखिम का न्यूनतम होना ही कुशल आपदा प्रबन्धन की परिणति है। हाँ, अगर महज खाना पूर्ति करनी है तो वह अलग बात है। फिर आपदा प्रबन्धन को कोसने और उलूल-जुलूल बातों पर लड़ने-झगड़ने से भी कुछ हासिल होने वाला नहीं।

Traditional Knowledge: Climate change assessment and adaption

- Sanchita Kaur

Over the course of history, and up to this day, traditional local communities have continued to rely heavily on indigenous knowledge to conserve the environment and deal with the changes happening in it. Community-based and local knowledge thus has the potential of offering valuable insights into the impact of climate change, and complement broader-scale scientific research with local precision and nuance. Home-grown societies have elaborate coping strategies to deal with unstable environments, and in some cases, these are already actively adapting to early climate change impacts. While the transformations due to climate change are expected to be unprecedented, traditional knowledge and coping strategies provide a crucial foundation for community-based adaptation measures.

Traditional knowledge is still intact among local communities in many parts of Uttarakhand. However, this knowledge is not well documented and it faces the threat of being lost as its custodians pass away. A study was thus undertaken in Pinder Valley of Bageshwar district in April 2014 to gather information on the use of traditional knowledge for coping with the changes in the environment around them. Semi-structured questionnaire was utilised for this purpose together with group interactions. The study provided with information on changes observed or perceived by the community in historic and current perspective in various physical parameters and processes around them.

Pinder river originates from Pindari glacier in Bageshwar district and has confluence with Alaknanda at Karnaprayag. Pinder valley is visibly amongst the most remote locations of the Uttarakhand hills. Absence of basic public amenities (road, transport and market) and frequently changing weather is observed to cause many hardships to the inhabitants. View of the delightful hillside villages and magnificent Himalayan panorama however eased our on foot journey through the difficult terrain and provided important insights into the changing lifestyle and tradition of the people.

Interactions with the masses make us believe that the people consider that the onset of the monsoon has lately become more uncertain. The period is perceived to have become short and erratic, with instances of intense rainfall having become more frequent. Likewise the summer season is perceived to have become warmer and the duration of the same is perceived to have lengthened. Less snowfall in winters and shortened duration of snow cover in the higher reaches has reportedly resulted in many other hardships. Crop yields have decreased because of pests; warmer climate being perceived to promote their chances of survival. Heavy rains are also held responsible for soil having become less productive. Water availability has decreased in rivers and streams along with availability of other natural resources.

Other than this, it is perceived that there is reduced regeneration of native plants like Thuner (Taxusbaccata Linn), Thuja Standishii, Banj (Quercusleucotrichophora Camus) and the forests have become relatively less dense. Decline in population of animals like Kakhad (Indian Muntjac) and Ghurar and increase in the population of apes, langur, and wild boars were common observations. Population of honeybees and butterflies was also reported to have decreased by manifold. Skunk (bee predator) is identified the major culprit for the reduced population of honeybees.

Change in timing of flowering of trees and plants are also reported. According to traditional custom, villagers of Pinder valley used to choose the area to be sown on the basis of the direction in which flowers the Payaan (in local paralance) start to bloom. It is reported that lately whole trunk of the tree has started to bloom simultaneously and the same has made it hard for the villagers to choose right area to be sown first. The practice has thus been abandoned.

Cropping pattern has been reportedly witnessing change; people have started sowing wheat instead of their traditional crops e.g. buckwheat, barley, millet and the like. Due to decreased yields the produce is reportedly barely sufficient for seven months. Growing unpredictability in agricultural pursuits is reportedly discouraging the local populace, especially the youth, from taking up agriculture as their means of livelihood. The valley is thus witnessing high rate of migration in search of income prospects in urban centers. The arable lands are thus fast turning fallow. This is a cause of worry for the farming community as these fallow lands are increasingly becoming non-arable.

Surely these changes cannot be attributed to climate change alone as anthropogenic factors influence these to a great extent; their impact on livelihoods is indisputable.

The strategies adopted by local residents are helping them in making their survival easier to some extent. They have diversified their source of income by converting their homes into rest houses for the tourists and working as guides and porters. This however provides seasonal employment, and surely not for all of them. In place of traditional crops high yielding variety of wheat and vegetables are usually grown in the area. People have also started to rely on allopathic medicines

instead of natural herbs.

With changes in their surroundings people are thus adapting practices that they perceive would make life easy. The cultural dynamics of the society is observed to accept adoption of urban materials and influences. The paradox of 'ship of Theseus' is appropriate here. If every plank of the famous ship is changed over the years, can it still be said to be preserved? It needs to be accepted that adapting to climate change needs creative effort.

An interdisciplinary approach is required to amalgamate traditional knowledge and mainstream scientific research and generate new knowledge that derives from the synergies between both the systems of knowledge. This is the way forward to devising promising and productive ways of addressing the complexities of climate change and adaptation.

Life is full of life

- Rahul Jugaran

Life is full of life

Just need to see it deep

The majesty and fragrance of flowers

Child cozy in mother's lap fast asleep

The squirrel in dilemma to cross the road

Life for many at crossroads

When the Sun sets for the dark

Life throws light, colours Moon and stars

Water flowing melodious in the stream

Lighting pebbles and bushes gaudy green

Cow generously sharing the golden white

Life's all welcome, loving and bright

Life is a soldier in the chess board

Destined to move forward

Life is a journey to be enjoyed

No permanent station or worrying for the destination

Life is not only about celebrating the new bud

It's also about rejoicing satisfaction of sharing and spreading

The fragrance and charm of the flower

Life is about the myriads of emotions

It's also about the tiny droplet's spirit

Living momentarily but merrily on the leaf

It's about the spiritual dance

Of the feather floating in the wind

Life is not about the hollowness with full bank balance

It's also about reinventing the treasures of bed time stories

Life is not to be seen as mundane letters on keyboards

But as the magic of words on the monitor

Life is about investing time in the hearts

It's about watching sheep in grasslands and tranquility

Life is about feeling the pain and tears in other's eyes

Crazy crystal balls carry a lot than meets the eyes

Life is about the melody of wind chimes

It's also about the soothing sound of leaflets

Life is also about honest endeavor to listen

The heart of old mother not able to speak.

स्मृति : 16 जून, 2013 की.....

–योगम्बर सिंह रावत

एक आदमी बह गया

एक परिवार बह गया

एक घर बह गया

एक संसार बह गया।

हजारों लोग बह गये

हजारों अरमान बह गये

हजारों ख्वाहिशों के

आसमान ढह गये।

एक सैलाब था देव भूमि में

और एक सैलाब है

बच्चों–बूढ़ों की आँखों में

आओं याद करें उन्हें

जो हर अपनों की साँसों में हैं।

(कवि एक सेवानिवृत्त समुद्री अभियन्ता हैं और वर्तमान में कोटद्वारा स्थित मालिनी वैली कॉलेज ऑफ ऐजुकेशन के निदेशक हैं)

भूकंप टिप – 3 परिमाण और तीव्रता क्या है?

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर और भवन निर्माण सामग्री एवं प्रौद्योगिकी संवर्धन, नई दिल्ली द्वारा भूकम्प जागरूकता हेतु विकसित 24 कड़ियों वाली इस श्रृंखला के पुनः प्रकाशन की अनुमति दिये जाने के लिये हम प्रो. सुधीर कुमार जैन, सिविल इंजीनियरिंग विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर (वर्तमान में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, गाँधीनगर के निदेशक) के आभारी हैं।

शब्दावली

भ्रंश (फॉल्ट) पर स्थित वह बिंदु जहां सर्पण (स्लिप) शुरू हो जाता है उद्गम केंद्र (फोकस) या 'अवकेंद्र' (हाइपोसेंटर) कहलाता है। पृथ्वी की सतह पर इस बिंदु से ऊर्ध्वाधर दिशा में स्थित बिंदु को अधिकेंद्र (एपिसेंटर) कहते हैं, (चित्र-1)। अधिकेंद्र से उद्गम केंद्र की गहराई, जिसे उद्गमकेंद्री या फोकल गहराई कहते हैं, किसी भूकंप की विनाशकारी क्षमता को निर्धारित करने वाली एक महत्वपूर्ण प्राचल (पैरामीटर) की भूमिका निभाती है। अधिकतर विनाशकारी भूकंपों का उद्गम केंद्र उथला होता है जिसकी फोकल गहराई लगभग 70 किलोमीटर से कम होती है। अधिकेंद्र से किसी भी वांछित बिंदु तक की दूरी को अधिकेंद्री दूरी कहा जाता है।

किसी बड़े भूकंप (यानी बड़े झटके) से पहले और बाद में बहुत से छोटे-मोटे भूकंप उठते हैं। बड़े भूकंप से पहले आने वाले भूकंपों को पूर्वघात या पूर्वकंप कहते हैं और बाद में आने वालों को उत्तरघात या उत्तरकंप।

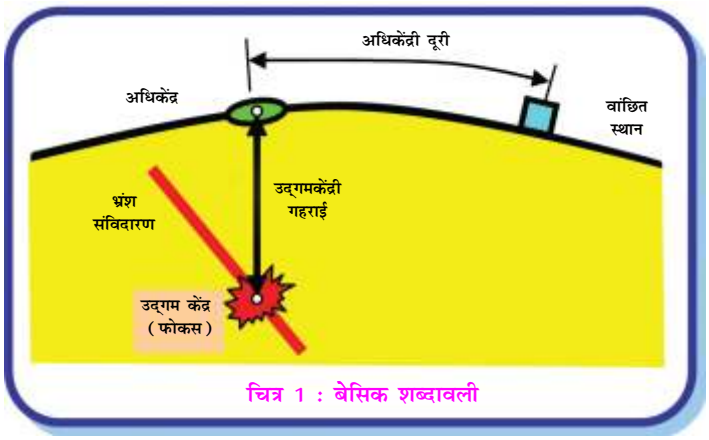

चित्र 1 : बेसिक शब्दावली

परिमाण

किसी भूकंप का परिमाण उसके वास्तविक आकार का मात्रात्मक माप होता है। प्रोफेसर चार्ल्स रिक्टर ने देखा कि (क) समान दूरी पर बड़े पैमाने पर उठने वाले भूकंपों का भूकंप अभिलेख (भूकंप के जमीनी कंपनों के रिकार्ड/आलेख) छोटे भूकंपों की तुलना में बड़े तरंग आयाम वाला होता है; और (ख) किसी एक भूकंप के लिए, अधिक दूरी पर स्थित भूकंप अभिलेखों का तरंग आयाम निकट स्थित भूकंप अभिलेखों की अपेक्षा कम होता है। इन प्रेक्षणों ने उन्हें रिक्टर पैमाने को प्रस्तावित करने की प्रेरणा दी जो अब सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाला परिमाण पैमाना है। यह भूकंप अभिलेखों से प्राप्त होता है और अभिकेंद्री दूरी पर तरंगरूपी आयाम की निर्भरता को समझाने में अपनी भूमिका निभाता है। इस पैमाने को स्थानीय परिमाण पैमाना भी कहते हैं। कुछ अन्य परिमाण पैमाने भी होते हैं, जैसे काय तरंग परिमाण, पृष्ठीय तरंग परिमाण और तरंग ऊर्जा परिमाण। इन संख्यात्मक परिमाण पैमानों की कोई ऊपरी और निचली सीमाएं नहीं होती हैं। किसी बहुत छोटे-से भूकंप का परिमाण शून्य या ऋणात्मक भी हो सकता है।

परिमाण (एम) में 1.0 की वृद्धि तरंग-रूपी आयाम में 10 गुना तथा उत्सर्जित ऊर्जा में लगभग 31 गुना अधिक ऊर्जा की सूचक होती है। उदाहरण के लिए, एम 7.7 भूकंप में एम 6.7 भूकंप की तुलना में 31 गुना अधिक ऊर्जा निर्मुक्त होती है और यह एम 5.7 भूकंप की अपेक्षा लगभग 1000 (~31×31)गुना अधिक होती है। निर्मुक्त होने वाली अधिकांश ऊर्जा, ऊष्मा के रूप में और चट्टानों को अविभंग करने या उनमें दरार पैदा करने में चली जाती है औ (सौभाग्यवश) उसका केवल एक छोटा सा हिस्सा ही भूकंपी तरंगों में जाता है। ये तरंगें बहुत अधिक दूरियों तक संचरित होकर मार्ग में आने वाली धरती को प्रकंपित करती हैं और संरचनाओं इमारती ढांचों को क्षति पहुंचाती हैं। (क्या आप जानते हैं? एम 6.3 भूकंप द्वारा निर्मुक्त ऊर्जा, 1945 में हिरोशिमा पर गिराए गए अणु बम द्वारा निर्मुक्त ऊर्जा के तुल्य होती है!!)

भूकंपों को उनके आकार के आधार पर प्रायः विभिन्न समूहों में वर्गीकृत किया जाता है (सारणी-1)। विश्वभर में उठने वाले भूकंपों की वार्षिक औसत संख्या को भी इन सभी समूहों के लिए, सारणी में दर्शाया गया है। इससे पता लगता है कि प्रत्येक वर्ष में औसतन एक भीषण भूकंप अवश्य आता है।

सारणी 1 : भूकंपों की वैश्विक घटनाएं

वर्ग	परिमाण	वार्षिक औसत संख्या
भीषण	8 और उससे अधिक	1
मुख्य	7-7.9	18
शक्तिशाली	6-6.9	120
मध्यम	5-5.9	800
हल्का	4-4.9	6,200 (अनुमानित)
गौण	3-3.9	49,000 (अनुमानित)
अति गौण	<3.0	एम 2-3:~1,000 प्रतिदिन; एम 1-2:~8,000 प्रतिदिन

स्रोत : http:/neic.usgs.gov/neis/eqlists/eqstats.html

तीव्रता

भूकंप के दौरान किसी स्थान पर होने वाले वास्तविक प्रकंपन के गुणात्मक माप को तीव्रता कहते हैं और इसे रोमन केपिटल संख्याओं द्वारा दर्शाया जाता है। अनेक प्रकार के तीव्रता पैमाने उपलब्ध हैं। इनमें से सामान्य तौर पर प्रयुक्त होने वाले दो पैमाने, संशोधित मरकैली तीव्रता (एम एम आई) पैमाना और एम एस के पैमाना हैं। दोनों पैमानों में काफी हद तक समानता होती है और ये I (सबसे कम तीव्र) से XII (सर्वाधिक भीषण) तक होते हैं। तीव्रता पैमाने, प्रकंपन के तीन अभिलक्षणों पर आधारित होते हैं – व्यक्तियों और पशुओं द्वारा किए गए आभास, इमारतों पर प्रभाव और प्राकृतिक परिवेश में परिवर्तन। एम एस के पैमाने पर तीव्रता VIII संबंधी विवरण को सारणी-2 में दिया गया है।

भूकंप के दौरान, विभिन्न स्थानों पर तीव्रता के विवरण को आलेखीय रूप में समभूकंपी रेखाओं (चित्र-2), द्वारा प्रदर्शित किया जाता है जो समान भूकंपी तीव्रता वाले स्थानों को परस्पर जोड़ती हैं।

चित्र 2 : सन् 2001 में भुज (भारत) में आए भूकंप का समभूकंपी मानचित्र (एम एस के तीव्रता)

स्रोत :ीजजचध्रूदपबममण्वतहध्दपबममध्मफध्त्मचवतजेध्ठीनरध्पेवेमपेउंसणीजउस

सारणी 2 : 'एम.एस.के.' पैमाने के अनुसार VIII तीव्रता कंपन का विवरण

तीव्रता VIII - भवनों का विनाश

(क)घबराहट और भगदड़। मोटर वाहन चलाने में परेशानी होने लगती है। यहां-वहां वृक्षों की टहनियां टूटकर गिर जाती हैं। यहां तक कि भारी फर्नीचर भी हिलते हैं और उनमें से कुछ उलट-पुलट जाते हैं। लटकते हुए लैंपों को भी कुछ हद तक हानि पहुंचती है।

(ख)सी (C) प्रकार की अधिकतर इमारतों में श्रेणी 2 और कुछ इमारतों में श्रेणी 3 के स्तर का विनाश होता है। प्रकार बी (B) के अधिकतर भवनों को श्रेणी 3 की क्षतिहोती है और ए (।) प्रकार के अधिकतर भवन श्रेणी 4 का विनाश झेलते हैं। कभी-कभी पाइपों के जोड़ भी टूट जाते हैं। स्मारक तथा इमारतें हिलते और ऐंठ जाते हैं। समाधियों में जड़े पत्थर पलट जाते हैं। पत्थर की दीवारें ढह जाती हैं।

(ग) खोखली जगहों और खड़ी ढालों वाली मुड़ी हुई सड़कों पर लघु भू-सर्पण होते हैं। जमीन पर कई सेंटीमीटर चौड़ाई वाली दरारें पैदा हो जाती हैं। तालाबों में पड़ा जल गंदला हो जाता है। नए जलाशय बन जाते हैं। सूखे कुएं पुनः भर जाते हैं और चालू कुएं सूख जाते हैं। कई मामलों में जल के बहाव और उसके स्तर में परिवर्तन भी देखने को मिलता है।

टिप्पणी:
- ए (।)प्ररकारक ोस रंचनाऐं- ग ावोंम ेंह ानेव ालेंा नमार्ण,ब ी(B)प्रकार – साधारण चिनाई वाले निर्माण, सी (C) प्रकार – सुनिर्मित इमारतें
- एकल, कुछ – लगभग 5 प्रतिशत(बहुत सारे – लगभग 50 प्रतिशत; अधिकतर – लगभग 75 प्रतिशत
- श्रेणी 1 क्षति – हल्की क्षति; श्रेणी 2 – मध्यम क्षति; श्रेणी 3 – भारी क्षति; श्रेणी 4 – विनाश; श्रेणी 5 – संपूर्ण विनाश।

मूलभूत अंतर : परिमाण बनाम तीव्रता

किसी भूकंप का परिमाण उसके स्तर का एक माप होता है। उदाहरण के लिए, किसी भूकंप के स्तर को भ्रंश संविदारण (फॉल्ट रप्चर) द्वारा विमुक्त ऊर्जा से नाप सकते हैं। मतलब यह कि किसी भूकंप के लिए भूकंप के परिमाण का सकल मान होता है। दूसरी ओर, तीव्रता किसी स्थान पर प्रकंपन की प्रबलता की सूचक होती है। स्पष्ट है कि प्रकंपन की प्रबलता अधिकेंद्र से दूर स्थित स्थल की तुलना में उसके निकट स्थित स्थल में कहीं अधिक होती है। अतः एक ही परिमाण के भूकंप के दौरान अलग-अलग स्थानों पर भूकंप की तीव्रता भी अलग होती है।

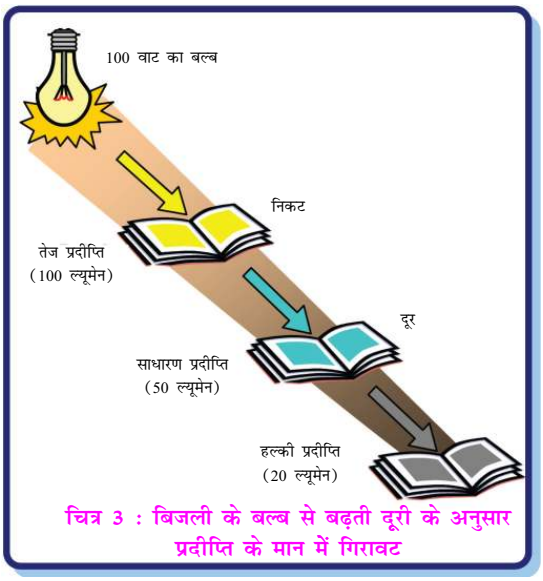

चित्र 3 : बिजली के बल्ब से बढ़ती दूरी के अनुसार प्रदीप्ति के मान में गिरावट

इस अंतर को और अधिक स्पष्ट करने के लिए बिजली के बल्ब का उदाहरण लेते हैं (चित्र-3)। एक 100 वाट के बल्ब के निकट स्थित बिंदु पर प्रदीप्ति उससे दूर स्थित बिन्दु की तुलना में अधिाक होगी। जबकि बल्ब से 100 वाट तुल्य ऊर्जा ही उत्सर्जित होती है, किसी स्थान पर प्रकाश की तीव्रता (या ल्यूमेन में मापी जाने वाली प्रदीप्ति) बल्ब की वाटता (वाटेज) और उस स्थान की बल्ब से दूरी पर निर्भर करती है। यहां बल्ब की वाटता (100 वाट) भूकंप के परिमाण के तुल्य है और किसी स्थान पर उसकी प्रदीप्ति उस स्थान पर भूकंप की तीव्रता की सूचक है।

भूकंप अभिकल्पन में परिमाण और तीव्रता

अक्सर यह सवाल पूछा जाता है : क्या मेरा भवन 7.0 परिमाण के भूकंप को झेल सकता है? लेकिन 7.0 तीव्रता का भूकंप अलग.अलग स्थानों पर अलग प्रकंपन तीव्रताओं का कारक बनता है और उन स्थानों पर भवनों को पहुंची क्षति भी अलग होती है। अतः भवनों और संरचनाओं का अभिकल्पन प्रकंपन की तीव्रता के स्तरों को झेलने की उनकी क्षमतान ा कि भ ूकंपक ेप रिमाणक ोअ धिकध यानम ेंर खतेह ुएह ीं कयाज ाताह ै। भू-प्रकंपन की प्रबलता को संख्यात्मक रूप से मापने का एक तरीका प्रकंपन के दौरान भूमि में अनुभव किया गया महत्तम त्वरण यानी शिखर भू-त्वरण (पीक ग्राउंड

सारणी 3 : विभिन्न तीव्रताओं के प्रकंपनों के दौरान शिखर भू-त्वरण (PGA) के मान

तीव्रता	V	VI	VII	VIII	IX	X
शिखर भू-त्वरण (g)	0.03-0.04	0.06-0.07	0.10-0.15	0.25-0.30	0.50-0.55	>0.60

स्रोत : वी.ए. बोल्ट, अर्थक्वेक्स, डब्ल्यू.एच. फ्रीमैन एंड कंपनी, न्यूयार्क, 1993

एक्सलेरेशन : PGA) है। **डड** तीव्रताओं और अनुभव किए गए शिखर भू-वरणों (PGA) के मानों के बीच सन्निकट आनुभाविक सहसंबंध उपलब्ध हैं (देखिए सारणी-3)

उदाहरण के लिए, सन् 2001 में भुज में आए भूकंप के दौरान, समभूकंपी रेखा VIII, (चित्र – 2) ने लगभग 0.25.0.30 g तक के शिखर भू-त्वरण का अनुभव किया होगा। लेकिन, अब विनाशी भू-प्रकंपन के संख्यात्मक मान के लिए भूकंपी उपकरणों द्वारा प्राप्त प्रबल भू-पृष्ठीय संचलन रिकार्डों पर ही भरोसा किया जाता है। इमारतों की लागत प्रभावी भूकंपरोधी डिजाइन तैयार करने में इनका काफी महत्व है।

विगत में आए भूकंपों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर, गुटेनबर्ग और रिक्टर नामक वैज्ञानिकों ने सन् 1956 में अभिकेंद्री क्षेत्र में आए किसी भूकंप के स्थानीय परिमाण M_L और उसी तीव्रता I_0 के बीच अधोलिखत सन्निकट सहसंबंध को प्रस्तुत किया था : M_L ? " 2/3 I_0+ 1 (इस समीकरण का प्रयोग करते समय तीव्रता सूचक रोमन संख्याओं की जगह संगत अरबी अंक लिखने होंगे, जैसे IX के स्थान पर 9.0)। अन्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तावित अनेक भिन्न समीकरण भी उपलब्ध हैं।

संदर्भ (पठन) सामग्री

1. रिक्टर, सी.एफ. (1958) एलीमेंटरी सीस्मोलॉजी, डब्ल्यू.एचफ्रीमैन एण्ड कंपनी, इं., सान फ्रांसिस्को, संयुक्त राज्य अमेरिका (यूरेशियन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली द्वारा इसका भारतीय पुनर्मद्रण 1969 में हुआ)।

2ण्ीजजचरू६६दमपबणनो हे ण्हवअ६दमपे६हमदमत ंसद्यी ंदकवनजे६ उंहदपजनकम;पदजमदेपजलणीजउस

साभार :

लेखक : सी.व्ही.आर. मूर्ति, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्था, कानपुर

प्रायोजक : भवन निर्माण सामग्री एवं प्रौद्योगिकी संवर्धन परिषद, नई दिल्ली

अनुवादक : आभास मुखर्जी अनुवादक समीक्षक : स्निग्धा ए. सान्याल